वर्ष ४६] * श्रीरामाङ्क—२ * [अङ्क १

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

संस्करण १,६५,०००

विषय-सूची

कल्याण, सौर फाल्गुन, श्रीकृष्ण-संवत् ५१९७, फरवरी १९७२

चित्र-सूची

Free of Charge] जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥ [बिना मूल्य

आदि सम्पादक—नित्यलीलालीन श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार। सम्पादक—चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री

मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

दशरथके मूर्तिमान भागधेय
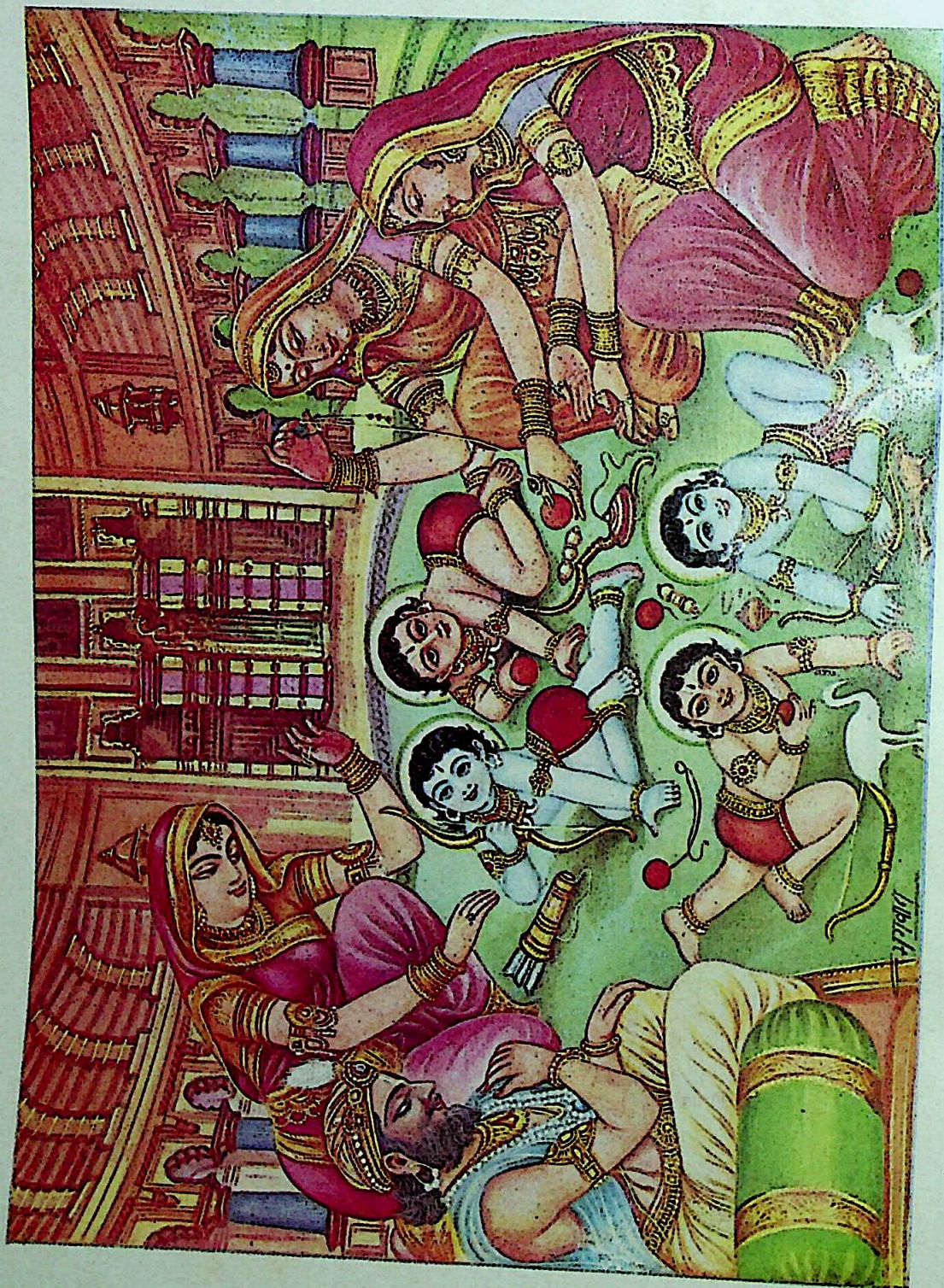
ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

कल्याण

दक्षिणे लक्ष्मणो यस्य वामे च जनकात्मजा । पुरतो मारुतिर्यस्य तं वन्दे रघुनन्दनम् ॥

(रामरक्षास्तोत्र, ३१

वर्ष ४६ } गोरखपुर, सौर फाल्गुन, श्रीकृष्ण-संवत् ५१९७, फरवरी १९७२ { संख्या २
पूर्ण संख्या ५४३

मन-मंदिरमें बिहरैं

तन की दुति स्याम सरोरुह, लोचन कंज की मंजुलताई हरैं ।
अति सुंदर सोहत धूरि भरे छबि भूरि अनंग की दूरि धरैं ॥
दमकैं दँतियाँ दुति दामिनि ज्यौं, किलकैं कल बालबिनोद करैं ।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी-मन-मंदिर मैं बिहरैं ॥

(कवितावली, बाल० ३)

महर्षि वसिष्ठकृत श्रीरामस्तवन

वसिष्ठ उवाच

त्वत्पादसलिलं धृत्वा धन्योऽभूद् गिरिजापतिः। ब्रह्मापि मत्पिता ते हि पादतीर्थहताशुभः ॥
इदानीं भाषसे यत्त्वं लोकानामुपदेशकृत्। जानामि त्वां परात्मानं लक्ष्म्या संजातमीश्वरम् ॥
देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थं भक्तानां भक्तिसिद्धये। रावणस्य वधार्थाय जातं जानामि राघव ॥
तथापि देवकार्यार्थं गुह्यं नोद्घाटयाम्यहम्। यथा त्वं मायया सर्वं करोषि रघुनन्दन ॥
तथैवानुविधास्येऽहं शिष्यस्त्वं गुरुरप्यहम्। गुरुर्गुरूणां त्वं देव पितॄणां त्वं पितामहः ॥
अन्तर्यामी जगद्यात्रावाहकस्त्वमगोचरः। शुद्धसत्त्वमयं देहं धृत्वा स्वाधीनसम्भवम् ॥
मनुष्य इव लोकेऽस्मिन् भासि त्वं योगमायया। पौरोहित्यमहं जाने विगर्ह्यं दूष्यजीवनम् ॥
इक्ष्वाकूणां कुले रामः परमात्मा जनिष्यते। इति ज्ञातं मया पूर्वं ब्रह्मणा कथितं पुरा ॥
ततोऽहमाशया राम तव सम्बन्धकाङ्क्षया। अकार्षं गर्हितमपि तवाचार्यत्वसिद्धये ॥
ततो मनोरथो मेऽद्य फलितो रघुनन्दन। त्वदधीना महामाया सर्वलोकैकमोहिनी ॥
मां यथा मोहयेन्नैव तथा कुरु रघूद्वह। गुरुनिष्कृतिकामस्त्वं यदि देह्येतदेव मे ॥

(अध्यात्मरामायण, अयोध्या० २ । २२–३२)

वसिष्ठजी कहते हैं—हे राम ! आपके पादोदकको मस्तकपर धारणकर पार्वतीवल्लभ भगवान् शंकर धन्य-धन्य हो गये तथा मेरे पिता ब्रह्माजी भी आपके पादतीर्थका सेवन करनेसे ही निष्पाप हो गये हैं। इस समय केवल संसारको यह उपदेश करनेके लिये कि 'गुरुके साथ किस प्रकार व्यवहार करना चाहिये', आप इस प्रकार सम्भाषण कर रहे हैं। मैं भली प्रकार जानता हूँ, आप लक्ष्मीके सहित प्रकट हुए साक्षात् परमात्मा विष्णु हैं। हे राघव ! मैं जानता हूँ कि आपने देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये, भक्तोंकी भक्ति सफल करनेके लिये और रावणका वध करनेके लिये ही अवतार लिया है, तथापि देवताओंकी कार्य-सिद्धिके लिये मैं इस गुप्त रहस्यको प्रकट नहीं करता। हे रघुनन्दन ! जिस प्रकार मायाके आश्रयसे आप सब कार्य करेंगे, उसी प्रकार मैं भी 'तुम शिष्य हो और मैं गुरु हूँ'—इस सम्बन्धके अनुकूल व्यवहार करूँगा। किंतु हे देव ! वास्तवमें तो आप ही गुरुओंके गुरु और पितृगणोंके पितामह हैं। आप अन्तर्यामी, जगद्व्यवहारके प्रवर्त्तक और मन-वाणीके अविषय हैं तथा स्वेच्छासे यह शुद्ध सत्त्वमय शरीर धारणकर इस लोकमें अपनी योगमायासे मनुष्यके समान प्रतीत होते हैं। मैं यह जानता हूँ कि पुरोहिताई अति निन्दनीय और दूषित जीविका है; तो भी जब पूर्वकालमें ब्रह्माजीके कहनेसे मुझे यह मालूम हुआ कि 'इक्ष्वाकुवंशमें परमात्मा राम अवतार लेंगे।' तब हे राम ! आपसे सम्बन्ध जोड़नेकी इच्छासे आपका आचार्य बननेके लिये इस निन्दनीय पदको भी मैंने स्वीकार कर लिया। हे रघुनन्दन ! आज मेरी इच्छा पूर्ण हो गयी। अब यदि गुरु-ऋणसे उऋण होना चाहते हैं तो मुझे यही दीजिये कि 'आपके अधीन रहनेवाली आपकी सर्वलोकविमोहिनी महामाया मुझे मोहित न करे।'

'रामो विग्रहवान् धर्मः'

(लेखक—श्री एन० कनकराज अय्यर, एम० ए०)

ऋषि वाल्मीकिको श्रीरामचन्द्रजीको केवल 'धर्मविग्रह' कहनेसे संतोष नहीं है । इसलिये काव्यमयी भाषामें वे उनका निज मनोगत चित्र इस पदावलीमें उतारते हैं—'विग्रहवान् धर्म श्रीराम'—जो मानवीय चरित्रकी पवित्रतम मूर्ति थे और जिन सर्वशक्तिमान्ने भक्ति एवं निःस्वार्थ भगवत्सेवाके अवतार श्रीआञ्जनेयको गूढ़ भाषामें हमारे उच्चतम दार्शनिक ज्ञानका सार बतानेकी कृपा की ।

भगवान् श्रीकृष्णका उपदेश श्रीगीता एक स्मृतिमात्र है, श्रुति नहीं; किंतु 'रामतापिनी उपनिषद्' एक श्रुति है और उपनिषदोंके बीच इसको यथोचित स्थान प्राप्त है । श्रीकृष्णने अर्जुनको अपना शिष्य मानकर उसे समस्त मानव-जातिके प्रतीकके स्थानपर स्थापित किया, श्रीरामने मानवताके प्रति अपने उदात्त संदेशामृतको भरनेके लिये हनुमान्के पवित्र हृदयको चुना । यही कर्म उनका महत्तम धर्मोपदेश है । उन्होंने केवल धर्ममय जीवन ही नहीं व्यतीत किया, धर्मका अनुभव ही नहीं किया, वरं धर्मके तत्त्वका प्रतिपादन भी किसी ऐसे-वैसेके सामने न करके धर्मवीर श्रीआञ्जनेयके प्रति किया । इस छोटे-से उपनिषद्में वह सारा दार्शनिक तत्त्व भरा है, जो ऋषियोंके मुँहसे महत्तम, गम्भीरतम तथा गूढ़तम उपनिषदोंमें अभिव्यक्त हुआ है ।

श्रीरामके धर्म-विग्रहका यह एक रूप है । उनकी धर्म-मूर्तिका एक दूसरा तथा मानवीय रूप भी है । वाल्मीकि एक गम्भीर विद्वान्, गम्भीरतर भक्त तथा गम्भीरतम दार्शनिक हैं । उन्होंने राम-विग्रहको अपनी लेखनीरूपी तूलिकासे चित्रितकर हम-जैसे आत्माके दरिद्र जीवोंको उन महान् मानव अवतारके सर्वोत्तम रूपको दिखानेकी चेष्टा की है । श्रीराम स्वयं स्वीकार करते हैं कि अपनी त्रुटियोंको लिये-दिये वे केवल एक मनुष्य हैं । रामायणके श्रीरामचन्द्रजी नायक हैं । उस विशाल नाटकके कई भागोंमें उनको अभिनय करना पड़ता है । शैशवसे लेकर जबतक वे इस संसारसे विदा नहीं हो जाते, उनका धर्ममूर्तिस्वरूप ही सामने आता है ।

अपने राज्यमें प्रजाजनके प्रति उनके प्रेमका गान राम-कथाके कवियोंने सुन्दर ढंगसे किया है । बचपनमें सब प्रकारके लोगोंके साथ वे स्वच्छन्दतापूर्वक विचरते थे । किसी भी बहानेसे अपने पास आनेवाले सभी व्यक्तियोंसे वे सहज ही उनका कुशल-क्षेम पूछते थे । प्रजा कहती थी—'कुमार ! आपको अपने स्वामीके रूपमें पाकर हमलोग धन्य हो गये हैं, वर्तमान अथवा भविष्यकी सारी चिन्ता-व्याकुलतासे हम मुक्त हो गये हैं । हमारा भूत आपके पिताके कल्याणप्रद शासनसे धन्य बना था ।'

कहा जाता है कि कैकेयीकी कुबड़ी दासी मन्थराके मनमें पवित्रात्मा, सरल-हृदय बालक रामके प्रति कुछ खोट थी । इस दासीको कैकेयी अपने पिताके घरसे लायी थी । कैकेयी सतीत्व तथा रामके प्रति पवित्रानुरागकी मूर्ति थी । अपने पेटसे जनमाये भरतकी अपेक्षा रामके प्रति उसके मनमें अधिक स्नेह है । किंतु कुबड़ी उसकी मति फेर देती है ।

भगवान्की उक्ति है—'धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ।' (गीता ४ । ८) वसुधापर धर्मकी नींव दृढ़ करनेके लिये उन्हें प्रत्येक उपायका अवलम्बन ग्रहण करना पड़ता है । इस अवतारमें उनके उद्देश्यकी पूर्तिके लिये मन्थराको एक यथार्थ यन्त्र बनना पड़ता है । भगवान् रामका अवतार हुआ था रावण तथा उसके अनुयायियोंको दण्ड देनेके लिये एवं उसके अत्याचारसे साधुजनोंकी रक्षा करनेके लिये । वनवासके द्वारा ही उनके उद्देश्यकी पूर्ति हो सकती थी । अतः अदृष्ट-प्रेरित मन्थरा रानी कैकेयीको उकसाती है और उसके द्वारा उकसायी गयी कैकेयी राजा दशरथसे राम-वनवासका वरदान माँगती है ।

पितृवाक्य-परिपालन रामका सर्वप्रथम धर्म था, जिसके लिये उन्होंने वनवास स्वीकार किया । सीता और लक्ष्मण उनके अनुगामी हुए । वनमें बड़े-बड़े महात्माओंने श्रीरामका स्वागत किया; उनके सामने लङ्काधिपति रावणके खर, दूषण और त्रिशिरा नामक मुखियोंके अधीनस्थ राक्षसदलद्वारा अपने संतापित होनेका दुखड़ा रोया । श्रीरामने उनकी प्रार्थना सुनी और उसी समय राक्षसोंका नाश करके सात्त्विक जनसमाज एवं तापस-परम्पराकी रक्षा करनेका वचन दिया । लक्ष्मण पास ही खड़े थे । प्रभु, स्वामी एवं अग्रजके निश्चयके पक्ष अथवा विपक्षमें उनको कुछ नहीं कहना था ।

किंतु श्रीसीताजीके मनमें एक भारी संदेह उठा, जिसका निराकरण राम ही कर सकते थे । रामके द्वारा ऋषियोंको

दिये हुए वचनोंपर सोच-विचार करके वे बोलीं—'धर्मात्मन् ! इन वनवासियोंके हल्के उपालम्भके थोड़े-से शब्दोंको सुनकर आपके लिये सम्पूर्णजातिका संहार करनेका व्रत ले लेना क्या धर्मसंगत है ? स्वामिन् ! क्या आप जानते हैं कि राक्षसोंने वास्तवमें इन लोगोंका अहित किया है ? यदि उन्होंने मुनियोंका अहित किया भी है तो बिना उनकी बात सुने उन्हें मारनेका आपको क्या अधिकार है ? क्या मैं आपसे यह बतानेके लिये प्रार्थना कर सकती हूँ कि आपके हृदयमें उन लोगोंने कौन-सी पीड़ा पहुँचायी है, जिसके कारण आप इस धर्म-विरुद्ध युद्धमें प्रवृत्त होने जा रहे हैं ?'

श्रीराम सीताजीके तर्कको सुनकर थोड़ी देर चुप रहे। फिर मधुर एवं युक्तियुक्त शब्दोंमें उत्तर देते हुए बोले—'प्रिये सीते ! तुमने अपनी शङ्का स्पष्ट शब्दोंमें मेरे सामने रख दी। अपने पिताके सत्यधर्मकी रक्षा करनेके लिये मैंने वनवासका वरण किया है। इस अवतारमें मेरा मुख्य धर्म है, दुष्ट-निग्रह। शिष्ट-परिपालन तो उसका सहज अनुगामी है। ऋषियोंने अपनी समस्त सात्त्विक शक्तियोंसे समवेत होकर अपनी कहानी कही थी। राक्षसोंने यहाँ महात्माओंका वध किया है। इधर-उधर अस्थि-शैल दृष्टिगोचर हो रहे हैं। साधुओंपर राक्षसोंद्वारा किये गये अत्याचारके ये मूर्तिमान् प्रमाण हैं। दुर्बल तथा पीड़ित व्यक्तियोंकी सहायता करना ही मेरे जीवनका प्रथम एवं प्रधान कर्तव्य है। खर-दूषणके राक्षस-दलद्वारा ऋषिगण अपने असंख्य स्वजनोंसे हाथ धो बैठे हैं। ऋषियोंको इस समय आवश्यकता है एक त्राता, जीवन-रक्षक तथा न्याय एवं मानवताके सच्चे सेवककी। पद-दलितोंके हित-साधनके लिये ही मैं यहाँ आया हूँ। थोड़े भी सात्त्विक तथा तपस्वी आत्माओंकी रक्षा करनेके लिये तामसी जीवोंके समूचे समूहसे भिड़नेको तैयार हूँ। मेरे जीवनका सर्वप्रथम सिद्धान्त है—मानवताके प्रति अतुलित प्रेम एवं शरणागत-रक्षण। यदि मैं संसारमें अपने इस आदिकर्तव्यको ही भूल जाता हूँ तो मेरा अवतार लेना ही व्यर्थ हो जायगा। मैं किसी निरीह प्राणीके प्रति शर-संधान नहीं करूँगा। धर्म मेरा जीवन है। धर्म ही मेरी साँस है। धर्म ही मेरी सत्ताका प्रमुख विधान है।' यह सुनकर सीताजी आश्वस्त हो गयीं।

सीता-परिणयके पूर्व भी श्रीरामको एक धार्मिक प्रश्नसे उलझना पड़ा था। विश्वामित्र उनको अपने यज्ञरक्षकके रूपमें वनमें ले गये। सुबाहु और मारीच उस समय ऋषियोंका उत्पीड़न कर रहे थे। यज्ञारम्भके पूर्व ही रामको ताटकाके रूपमें एक राक्षसीसे टक्कर लेनी पड़ी। रूप और आकृतिसे स्त्री होनेपर भी उसके शरीरमें सहस्र हाथियोंका बल था तथा दस सहस्र वृकोंका क्रोध। वह रास्ता रोककर खड़ी हो गयी और रामको युद्धके लिये ललकारा। रामके मनको स्त्रीका वध करना स्वीकार नहीं था। तब विश्वामित्र रामके सम्मुख धर्मके रूपको प्रस्तुत करते हैं—'यह केवल रूप और आकृतिसे स्त्री है, वास्तवमें तो राक्षसी है। इस क्षेत्रमें कितने ही साधुजनोंका वध करके यह उन्हें उदरसात् कर गयी है। इसने अपनी अपहरण-प्रवणता, क्रूरता तथा बुभुक्षाके द्वारा एक बड़े उपजाऊ भू-भागको उजाड़ बना दिया है। इस राक्षसीको देखकर हम सभी थर-थर काँप रहे हैं। मैं कहता हूँ, इसे मारो। मैं तुम्हारा गुरु हूँ। यह मेरी अनन्य और अकाट्य इच्छा है कि तुम इसको लक्ष्य बनाकर चाप चढ़ाओ। यदि तुम मेरे वचनोंकी अवज्ञा करोगे तो धर्मसे च्युत होओगे।' यह है सच्चा सनातन-धर्म। श्रीरामने गुरुकी धर्ममूलक आज्ञाको सिर चढ़ाया और ताटकाका तुरंत वध कर दिया। गुरु-भक्ति एवं आज्ञापालनके इस महान् कृत्यसे धर्मकी रक्षा हुई।

कौसल्याने रामसे आग्रह किया कि वे वनको न जायँ; पर यदि उन्होंने वनवासका ही निश्चय कर लिया हो तो उनको भी साथ ले जायँ। धर्ममूर्ति राम माताको समझाते हैं कि जीवनकी उस वेलामें वे पतिकी सेवा करें तथा उन दुर्बल एवं जराग्रस्त पुरुषसे अलग होनेकी बात मनमें भी न लायें। उन्हींके शब्दोंमें भलीभाँति व्यक्त हुआ है, उनका धर्मरक्षण।

वनगमनके पश्चात् जब श्रीराम चित्रकूटमें निवास कर रहे थे, उन्हें लौटानेके लिये भरत चित्रकूट आये और, जैसा कि धर्मवीरको करना चाहिये, उनसे अयोध्या लौटकर राज्यशासनको सँभालनेके लिये प्रार्थना की। किंतु रामने अयोध्या वापस जाना अस्वीकार कर दिया। इतना ही नहीं, उन्होंने भरतसे कहा कि उन्हें बड़े भाईकी आज्ञा माननी चाहिये और उन्हें अयोध्या लौट जानेके लिये बाध्य किया। श्रीरामने यहाँ अपने वनवासका यथार्थ कारण व्यक्त किया है। उन्होंने कहा—हमारे पिता अब नहीं हैं, 'किंतु उनकी अन्तिम इच्छा यही थी कि मैं वनवासी बनूँ और तुम शासनकी बागडोर सँभालो।' भरतको यह व्यवस्था पसंद नहीं आयी। इसलिये उन्होंने श्रीरामपादुकाओंको ले जाकर सिंहासनपर

बैठा दिया। श्रीरामकी पादुकाओंने राजपदपर तथा राज्यपर आनेवाली सभी विपदाओंको अपास्त कर दिया। श्रीरामकी धार्मिक वृत्ति उनकी पादुकाओंमें संक्रमित हो गयी, जो तत्कालीन कोसलकी धार्मिक स्थितिकी रक्षा कर रही थी। यदि पादुकाओं-को श्रीरामसे यह महान् शक्ति न मिली होती तो संसारमें और कौन मानवताकी रक्षा करनेमें समर्थ था? अयोध्या चौदह वर्षोंतक पादुकाओंके शासनमें रही। यह कहा जाता है कि उन चौदह वर्षोंमें धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष भी अयोध्यामें अपने पुनीततम रूपमें विराजमान रहे—स्वयं रामके शासनकालसे भी अधिक थी उनकी पावनता। इस प्रकार अयोध्याके समीप नन्दिग्राममें स्थापित श्रीरामकी पादुकाओंने राम-धर्मका यशोवर्द्धन किया।

शूर्पणखाके प्रसङ्गमें भी श्रीरामने अपना औचित्ययुक्त तथा संयमित रूप उपस्थित किया है। राक्षसीने उनसे सहवासकी याचना की, परंतु एकपत्नी-व्रती होनेके कारण उन्होंने उसकी प्रार्थना ठुकरा दी। जब वह सीताजीको ही लेकर चम्पत होनेको उद्यत हुई, तब लक्ष्मणने उसको दण्ड दिया। श्रीरामने सदैव ही एकपत्नीव्रतके धर्मका दृढ़तापूर्वक निर्वाह किया।

खर-दूषणके साथ युद्धमें श्रीराम धर्मके प्रतिनिधिके रूपमें अकेले खड़े हुए। अधर्मके प्रत्येक कोनेमें खड़ी राक्षसी-सेनाका उस धर्मवीरने अकेले सामना किया। धर्मकी एक सात्त्विक शक्ति अधर्मके चौदह सहस्र और तीनका अस्तित्व विलीन करनेमें समर्थ हुई। श्रीरामने सिद्ध कर दिया कि वे वास्तवमें 'धर्म-विग्रह' थे।

मारीच-प्रसङ्गमें सीताकी स्वर्ण-मृगविषयक तीव्र लालसाके कारण श्रीराम मारीचके पीछे गये। लक्ष्मणने स्पष्टरूपसे बता दिया था कि वह मृग प्राकृत मृग नहीं था। श्रीरामने लक्ष्मण-की इस बातपर ध्यान नहीं दिया, जिससे रावण-वधका मार्ग प्रशस्त हुआ। रावण संन्यासी-वेषमें श्रीरामकी पर्णशालापर उस समय आया, जब कि सीताजी वहाँ अकेली रह गयी थी। मायामृगका वध करके श्रीराम आश्रमको लौट रहे थे। उन्हें छोड़कर श्रीरामके पास जानेके लिये सीताने लक्ष्मणको विवश कर दिया। इस प्रकार यहाँसे रामावतारके वास्तविक उद्देश्यका श्रीगणेश होता है।

मृत्युकी यन्त्रणामें पड़े हुए मारीचने तुमुल चीत्कार करते हुए पुकारा—'हा सीते! हा लक्ष्मण!' सीताने इसको सुना। रामके अकेलेपनपर उनको चिन्ता हुई और उन्होंने लक्ष्मणको उनके पीछे भेजा। यहाँ लक्ष्मणको सीतादेवीका आज्ञा-पालन करना ही था। यह जानते हुए भी कि क्या होने जा रहा है, उनको सीताको अकेले छोड़ना पड़ा। यह स्वयं भगवान्का विधान था।

रावण आश्रमसे सीताको हर ले गया। गृध्रराज जटायुने राक्षससे लोहा लिया और अपने जीवनको उत्सर्ग कर दिया। श्रीरामने जटायुके साथ अपने पिता दशरथके समान व्यवहार किया।

लङ्कामें विभीषण ही एकमात्र पवित्र व्यक्ति था। जब रस्सियोंसे बँधे हनुमान् रावणके दरबारमें उपस्थित किये गये, तब उनकी मुक्तिके लिये उसने ही अनुरोध किया। उसने ही अपने भाईसे प्रार्थना की कि वे सीताजीको रामको लौटाकर युद्धका अन्त कर दें। रावणने उनकी बात मानना तो दूर रहा, उन्हें अपमानपूर्वक देशसे निकाल दिया। युद्धकाण्डमें विभीषण-शरणागतिका प्रसङ्ग बड़ा ही पावन है। निर्वासित भाईने श्रीरामके सम्मुख करबद्ध उपस्थित होकर कहा—

> निवेदयत मां क्षिप्रं राघवाय महात्मने।
> सर्वलोकशरण्याय विभीषणमुपस्थितम्॥
>
> (वा० रा० ६। १७। १७)

लक्ष्मण, सुग्रीव, जाम्बवान् तथा अङ्गदादि विभीषणको पुण्यमूर्ति भगवान्के सम्मुख ले जानेके पक्षमें नहीं थे, किंतु विभीषणके मन-प्राणको जाननेवाले आञ्जनेयने उसे श्रीरामकी सांनिध्य-सीमामें ले जानेकी प्रार्थना की। मनकी तुलापर श्रीरामने दोनों पक्षोंको तौला और शरणागतरक्षाके कई उदाहरण देकर अन्ततोगत्वा उसको अपने एक भाईके रूपमें स्वीकार करनेका निश्चय किया। इस अवसरपर उनके विचारोंकी कम्त्र् सुन्दर अभिव्यञ्जना करते हैं—'जब मैंने गुहको अपनी परिधिमें लिया, तब हम पाँच भाई हुए, जब मैंने सुग्रीवके साथ यह पवित्र सम्बन्ध अङ्गीकार किया, तब हम छः हुए, और अब जब पवित्र हृदय एवं पवित्रतर आत्मासे युक्त तुम हमारे पक्षमें आ गये हो, तब हम सात हो गये हैं। इस प्रकार हमारे पिता दशरथने हमें वनमें भेजकर अपने पुत्रोंकी संख्या बढ़ायी है।' लक्ष्मणने विभीषणको लङ्काके राज्यपर अभिषिक्त किया।

विभीषण-शरणागतिने यह सिद्ध कर दिया कि श्रीराम सर्वश्रेष्ठ शरण्यमूर्ति हैं तथा शरणागतोंमें विभीषण सबसे अधिक पवित्रात्मा थे—रामधर्म यहीं सर्वोच्च शिखरपर चढ़कर

देदीप्यमान होता है। श्रीरामकी साधुता और महानता उनसे कहलाती हैं—'यदि रावण इस बातके लिये तैयार हो जाय कि वह यहाँ आकर मुझसे कृपाकी भीख माँगे तो मैं उसे भी अपनी परिधिमें लेनेको प्रस्तुत हूँ।'

युद्धके पहले दिन ही रावणके सारे शस्त्रास्त्र नष्ट हो गये और वह रिक्त-हस्त खड़ा था। यह श्रीरामकी ही महानता थी कि उसे घर जानेकी अनुमति देकर दूसरे दिन फिर युद्धके लिये कटिबद्ध होकर आनेके लिये कहा। यह श्रीरामके धार्मिक मनका सच्चा चित्र प्रस्तुत करता है।

युद्धकी अन्तिम स्थितिमें रावण स्वयं श्रीरामकी महानताकी प्रशंसा करता है। मन्दोदरी भी श्रीरामके धर्ममय चरित्रकी प्रशंसा करती है। रावण तथा उसकी सेनाओंकी सारी शक्ति धर्ममूर्ति श्रीरामके हाथों पराजित होती है। युद्धके सभी क्षेत्रोंमें असाधुताके ऊपर साधुताकी विजय होती है। राम थे साधुताकी मूर्ति और रावण असाधुताकी।

रामधर्मके इस अध्ययनमें सीताजीका अग्नि-प्रवेश तथा रामका पट्टाभिषेक ऐसा प्रसङ्ग है, जिसे हम छोड़ नहीं सकते। सीता तो गुणोंकी खान थीं, पवित्रताकी प्रतिमा थीं। उनके हृदय-मन्दिरमें रामकी ही आलोकमयी मूर्ति विराजित थी। उन्हें विवश होकर रावणके कारावासमें एक वर्षतक घुलना पड़ा था। एक पवित्रतम चरित्रके अन्तर्गत ऐसा प्रसङ्ग कलङ्करूप है। श्रीरामने अग्नि-संस्कारके द्वारा उनका शुद्धीकरण करना चाहा। अतः उन्होंने लक्ष्मणको ईंधनकी एक विशाल राशि एकत्रित करके उसको प्रज्वलित करनेके लिये कहा। सीताने धधकती आगमें प्रवेश किया। देवताओं तथा अन्य जनोंने भी इस शोधन-संस्कारका दर्शन किया। दिव्यरूपमें पधारे हुए अपने पिताकी आज्ञासे श्रीरामने उनको अपनी पत्नीके रूपमें पुनः स्वीकार किया।

अयोध्या लौटते समय श्रीराम सुग्रीव एवं उनके अनुयायियों और इसी प्रकार विभीषण और उनके अनुयायियोंको भी अपने साथ ले जाते हैं। इस स्थलपर रामके नृपोचित कर्तव्योंका बड़ा सुन्दर वर्णन हुआ है।

पट्टाभिषिक्त राम अपने सब मित्रोंको उपहार प्रदान करते हैं। हनुमान्‌को एक विशेष उपहार मिलता है।

अपनी नर-लीलाके अवसानके समय श्रीराम सरयूजीमें प्रवेश करते हैं। मोक्षकी कामनावाले सभी लोगोंसे वे अपनेसे पहले सरयूमें अवगाहन करनेकी प्रार्थना करते हैं। प्रायः सभी प्राणी इस वरदानका लाभ उठाते हैं। श्रीरामने एक हनुमान्‌को अलग कर लिया कि इस संसारमें रहकर वे जगत्‌में रामधर्मकी सत्यताका प्रतिनिधित्व करें।

'श्रीराम जय राम, जय-जय राम!'

मिथिलाकी झाँकी

(रचयिता—पं० स्वामी श्रीअवधकिशोरदासजी 'प्रेमनिधि')

सरस श्रीमिथिला की झाँकी।
मन भावत मोहि जनक-लली की, भूमि चरन-रज-आँकी॥
बेद-पुरान, महेस-सेस नित बरनत महिमा जाकी।
निसि-दिन ध्यावत, प्रभु-गुन गावत सुभ, सारद मति थाकी॥
मंजुल भूमि सजल सर सोभित, सरिता मनहुँ सुधा की।
क्रीडत खग सीता रटि सुंदर, सदा प्रेम-रस-छाकी॥
जहँ-तहँ संत मगन मन सुमिरत मूरति राम-सिया की।
जहँ-तहँ बिपुल लगीं अमराईं, जो अवधी सुषमा की॥
सखि सीता कहुँ ललित नाम ध्वनि कूजत चिड़ी जहाँ की।
'प्रेमनिधी' प्रभु-प्रेम-भक्तिप्रद, चाहत रज मिथिला की॥

श्रीरामचरित्रमें नाट्यसौन्दर्य

(लेखक—डॉ० श्रीधर भास्कर वर्णेकर, एम्० ए०, डी० लिट्)

नाट्यका मुख्य प्रयोजन

नाट्यशास्त्रके प्रवर्तक श्रीभरतमुनिने नाटकका निम्नलिखित प्रयोजन बताया है—

दुःखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम्।
विश्रामजननं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति ॥
(१ । ११४)

इस वचनके अनुसार दुःखार्त, श्रमार्त और शोकार्त तपस्वियोंको विश्रान्तिसुख देना—यही नाट्यका मुख्य प्रयोजन भारतीय संस्कृतिने माना है। नाटकोंसे चतुर्विध पुरुषार्थोंका तथा विविध कलाओंका भी ज्ञान पाठकको हो सकता है, परंतु यह उसका मुख्य प्रयोजन नहीं हो सकता। पुरुषार्थों और कलाओंका ज्ञान इतिहास-पुराणादिके अध्ययनसे अच्छी तरह हो सकता है; परंतु दुःखार्त, श्रमार्त तथा शोकार्त सज्जनोंको ब्रह्मानन्दसहोदर आनन्दानुभव देनेकी सामर्थ्य केवल काव्यमें—और उसमें भी अधिक 'काव्येषु नाटकं रम्यम्'—इस वचनानुसार नाटकमें प्रतीत होती है। अतः वही इसका मुख्य प्रयोजन है।

नाट्यवाङ्मयकी जो अपनी निजी विशेषता है, उसीके कारण उसमें दुःखार्त, शोकार्त और श्रमार्त अन्तःकरणोंमें आनन्दका निर्झर निर्माण करनेकी सामर्थ्य आती है। नाटककी इसी अनोखी विशेषताके कारण अनादिकालसे सभी प्रकारका मानव-समूह नाट्यमन्दिरोंमें संकुलता उत्पन्न करता आ रहा है और आगे भी करता रहेगा।

'नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्'—यह कवि-कुलगुरु कालिदासका नाट्यविषयक प्रशंसोद्गार निरपवाद सत्य है। भिन्न-भिन्न रुचिकी जनताको एक साथ प्रसन्न—आनन्दित करनेकी नाटकोचित विशेषता श्रीरामचरित्रमें आद्योपान्त भरी हुई है। नाटकमें रसवत्ताका निर्माण करनेके लिये जिन तत्त्वोंकी आवश्यकता नाट्यशास्त्रमें मानी गयी है, वे सभी शास्त्रोक्त तत्त्व रामचरित्रमें अत्यधिक मात्रामें विद्यमान हैं। उन नाटकीय तत्त्वोंके कारण ही बालकसे वृद्धतक तथा अपढ़से महापण्डिततक—सभी प्रकारके मानवोंको रामचरित्र अनादिकालसे परम प्रिय होता आ रहा है और अनन्त कालतक परम प्रिय होता रहेगा। रामकथाका आनन्द शाश्वत और सनातन है और उस आनन्दमयताका रहस्य उसकी नाट्यात्मकतामें ही है। वह नाट्यात्मकता रामकथामें न होती तो केवल रामोपासकोंको ही रामकथामें आनन्द आता; परंतु नितान्त नास्तिकोंको भी रामकथा आनन्द देती है। प्रस्तुत लेखमें उस सर्वानन्ददायक नाट्यतत्त्वकी दृष्टिसे रामकथाका चिन्तन कर्तव्य है।

नाट्यशास्त्रमें नाट्य-वाङ्मयका वस्तु, नेता और रस—इन तीन तत्त्वोंमें विभाजन करते हुए विविध प्रकारके रूपकोंमें आनन्ददायकता विकसित करनेकी दृष्टिसे विधि-निषेधात्मक मार्गदर्शन किया गया है। उस मार्गदर्शनका अनुपालन जिन साहित्यिकोंने किया है, उनके नाटक सर्वत्र सहृदय सामाजिकोंमें निरन्तर मान्य हुए हैं। जिनकी कलाकृतियोंमें उस मार्गदर्शनका उल्लङ्घन हुआ है, वे कृतियाँ सहृदयोंके अन्तःकरणोंमें स्थान नहीं प्राप्त कर सकीं।

रामायणकी कथावस्तु

किसी भी नाट्यकृतिकी मनोहरता उसकी कथावस्तुपर प्रधानतासे निर्भर होती है। चतुर्विध अभिनयकला तथा संगीत-नृत्यादिके विशेषज्ञोंको छोड़कर प्रायः सभी सामान्य दर्शक नाट्यकी कथावस्तुमें अधिकमात्रामें तन्मय होते हैं। नाट्यप्रयोग देखनेके पश्चात् वे आपसमें चर्चा करते हैं कथावस्तुकी। अन्य मित्रोंसे नाटकका विषय-कथन करते समय निवेदन करते हैं, तो कथावस्तुका ही। नाटककी कथावस्तुमें दो भागोंकी आवश्यकता होती है—(१) आधिकारिक कथावस्तु और (२) प्रासङ्गिक कथावस्तु।

'आधिकारिक कथावस्तु' नायकके जीवनप्रवाहसे साक्षात् सम्बन्ध रखती है, इसलिये वह मुख्य होती है; और 'प्रासङ्गिक कथावस्तु' उससे दूरान्वयसे सम्बन्ध रखती है अतः वह गौण होती है। रामायणमें प्रभु रामचन्द्रजीकी जीवनकथा आधिकारिक वस्तुके रूपमें महर्षि वाल्मीकिने वर्णन की है और उस आधिकारिक कथावस्तुको गति देनेके लिये तथा उसकी रोचकता अधिक बढ़ानेके लिये उसमें वालि-सुग्रीवकी कथा तथा श्रमणा शबरीकी कथा प्रासङ्गिक कथावस्तुके रूपमें वर्णन की है। मूल-रामायण ग्रन्थमें इन दो प्रासङ्गिक कथाओंके समान कई प्रासङ्गिक कथाएँ हमें पढ़नेको मिलती हैं, जिसके कारण प्रभु रामचन्द्रजीकी

प्रमुख चरित्रधारामें अन्यान्य प्रकारके संगमतीर्थोंका निर्माण होनेके कारण उसकी रोचकता बढ़ती गयी है।

नाट्यशास्त्रमें प्रासङ्गिक कथावस्तुके दो भेद माने गये हैं—(१) पताका और (२) प्रकरी। उनके लक्षण हैं—'सानुबन्धं पताकाख्यं प्रकरी च प्रदेशभाक्।' (दशरूपक १। १३) 'दूरं यदनुवर्तते प्रासङ्गिकं सा पताका, यदल्पं सा प्रकरी।' (उसकी प्रभानाम्नी टीका) अर्थात् जो प्रासङ्गिक कथा रूपकमें दूरतक चलती रहती है, वह 'पताका' कहलाती है और जो केवल एक ही प्रदेशतक सीमित रहती है, वह 'प्रकरी' कहलाती है।

नाट्यशास्त्रविषयक 'दशरूपक' ग्रन्थके टीकालेखकको आदर्श कथावस्तुके उदाहरणरूपमें रामायणसे ही आधिकारिक और द्विविध प्रासङ्गिक [(१) पताका, (२) प्रकरी] कथावस्तुके उदाहरण देनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई। इसका यही कारण है कि रामायणके लेखकने कथावस्तुकी रोचकता बढ़ानेवाले इस तत्त्वका ठीक रीतिसे अनुपालन किया है।

रामायणकी उपरिनिर्दिष्ट दो प्रासङ्गिक कथाओंमें सुग्रीवकी प्रासङ्गिक कथा प्रदीर्घताके कारण 'पताका'-रूपा है और शबरीकी कथा अल्पताके कारण 'प्रकरी'-रूपा है। इनके अतिरिक्त श्रवणकुमारकी कथा, रावण-कुम्भकर्णादि राक्षसों तथा जनक-परशुराम, हनुमान्, अगस्त्य, वसिष्ठ, जटायु इत्यादि अनेकोंके कथावृत्त पताका-प्रकरीके स्वरूपमें आधिकारिक रामकथाकी मनोहरता शतगुणित करते हैं।

इस प्रकारकी आधिकारिक तथा प्रासङ्गिक कथावस्तुमें (१) प्रख्यात, (२) उत्पाद्य और (३) मिश्र अंश होनेसे तथा उनमें (१) दिव्य, (२) मर्त्य और (३) दिव्यादिव्य व्यक्तित्वका चित्रण होनेसे कथाकी रोचकता बढ़ती है। वाल्मीकिविरचित रामायणमें—

> आदौ रामतपोवनादिगमनं हत्वा मृगं काञ्चनं
> वैदेहीहरणं जटायुमरणं सुग्रीवसम्भाषणम्।
> बालेर्निग्रहणं समुद्रतरणं लङ्कापुरीवेष्टनम्
> पश्चाद् रावणकुम्भकर्णहननं चैतद्धि रामायणम्॥
>
> (समयादर्शरामायण, २)

—इस प्रसिद्ध श्लोकमें वर्णित सरल इतिवृत्तको अनेक उत्पाद्य और मिश्र कथावृत्तोंसे सजाया गया है और उनमें दिव्य, मर्त्य तथा दिव्यादिव्य व्यक्तित्वोंसे सम्बन्धित कतिपय घटनाएँ जोड़ देनेसे कथाकी रोचकता बढ़ी है।

नाट्यशास्त्रकी दृष्टिसे उत्कृष्ट रूपककी कथावस्तुमें जिन गुणोंकी आवश्यकता मानी गयी है, वे समस्त गुण रामायणकी कथामें प्रचुर मात्रामें हमें दिखायी देते हैं।

रामकथाका प्रयोजन

रूपककी कथावस्तुमें केवल रोचकता होते हुए यदि विशेष प्रयोजन न हो तो वह कथावस्तु निष्फलताके कारण सज्जनोंको उपादेय नहीं होगी। इसलिये नाट्यशास्त्रकारोंका आदेश है कि 'कार्यं त्रिवर्गः' (दशरूपक १। १६)—रूपककी कथावस्तुका कार्य अर्थात् प्रयोजन या फल (धर्म, अर्थ तथा कामरूपी) 'त्रिवर्ग' है। यह प्रयोजन इस त्रिवर्गमेंसे कभी केवल धर्म, कभी धर्म और अर्थ—दोनों तथा कभी धर्म, अर्थ और काम—तीनों होता है।

रामायणकी आधिकारिक कथाका प्रयोजन अखिल मानवजातिको आदर्श आचारधर्मका ज्ञान देना ही है। रामचरित्रका आदर्श रखते हुए संसारके सभी मानव अपनी चारित्र्यशुद्धि करें। 'रामादिवद् वर्तितव्यं न क्वचिद् रावणादिवत्' यही रामकथाका निर्गलितार्थ है।

प्रभु रामचन्द्र एक आदर्श राजा होनेके कारण उनकी जीवन-कथाका प्रयोजन अर्थ और कामका स्वरूप-निर्देश भी है। अर्थ-कामनिष्ठ राजजीवनपर धर्मका नियन्त्रण कितनी मात्रामें होना चाहिये, धर्ममूलक अर्थ और कामकी प्राप्ति किस प्रकार करनी चाहिये—इसका सर्वोत्कृष्ट ज्ञान मानवजातिको आजतक रामकथाने दिया है। भारतीय जन-जीवनका वही सनातन आदर्श रहा है।

कथावस्तुका प्रयोजन सिद्ध होनेके लिये जिन तत्त्वोंकी आवश्यकता होती है, उन्हें नाट्यशास्त्रमें 'अर्थप्रकृति' संज्ञा दी गयी है (अर्थ=प्रयोजन, प्रकृति=मूलकारण)।

रामकथामें प्रमुख कार्य (अथवा प्रयोजन, अर्थ) है—रावणका वध। उसकी सिद्धिके लिये (१) बीज, (२) बिन्दु, (३) पताका, (४) प्रकरी और (५) कार्य नामक पाँच प्रकारकी अर्थप्रकृतियोंका अवलम्बन कथाकी रचनामें यथावत् हुआ है, जिनमें पताका और प्रकरीके उदाहरण ऊपर निर्दिष्ट किये गये हैं।

रावणवधके लिये विभीषणका सख्य आवश्यक था। वह अवान्तर 'कार्य'-रूप अर्थ-प्रकृतिके रूपमें हमें रामायणमें मिलता है। विभीषणका सख्य प्राप्त न होता तो रामकथाका मुख्य प्रयोजन (रावणवध) पताका (सुग्रीव-कथा) और प्रकरी (शबरी-कथा) रूप अर्थप्रकृतियोंके विद्यमान रहते भी सिद्ध नहीं होता।

मारीच-प्रसङ्गमें सीताका अपहरण होनेके बाद प्रमुख कथा खण्डित-सी होती है। इस अवस्थामें उसे जोड़ने और आगे बढ़ानेके लिये जटायुकी कथा आती है, जो 'बिन्दु' नामक (अवान्तरार्थविच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणम्) अर्थप्रकृति मानी जा सकती है।

अहंकारी रावणने अमरत्वका वरदान माँगते हुए मानव-शक्तिकी उपेक्षा की थी। इसी घटनामें मुख्य प्रयोजनकी सिद्धिकी 'बीज' नामक (स्वल्पोद्दिष्टस्तु तद्धेतुर्बीजं विस्तार्यते कथा।) अर्थप्रकृति हमें दिखायी देती है।

इस प्रकार नाटकीय कथावस्तुमें हृद्यता या आनन्द-दायकता निर्माण करनेके लिये जिन पाँच तत्त्वोंकी आवश्यकता नाट्यशास्त्रने प्रतिपादन की है, वे सभी उत्कृष्टरूपमें हमें रामायणकी कथामें दिखायी देते हैं।

कथाका मुख्य प्रयोजन सिद्ध करनेवाली पाँच अर्थ-प्रकृतियाँ जिस तरह उपादेय होती हैं, उसी तरह साथ ही मुख्य प्रयोजनकी सिद्धि पाँच अवस्थाओंमें बतानेसे कथाकी रोचकता बढ़ती है। (१) आरम्भ, (२) यत्न, (३) प्राप्त्याशा, (४) नियताप्ति और (५) फलागम—ये पाँच अवस्थाओंकी अन्वर्थक संज्ञाएँ नाट्यशास्त्रमें बतायी गयी हैं। इन पाँच अवस्थाओंको टालकर सहसा किसी अद्भुत उपायके कारण 'फलप्राप्ति' या मुख्य प्रयोजनकी सिद्धि कथामें वर्णन करनेपर कथावस्तुकी रोचकता तत्काल समाप्त हो जाती है। रावणवध या सीताप्राप्तिरूप फलकी प्राप्तिके लिये आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा और नियताप्ति—इन चार कार्यावस्थाओंकी ओर रामायणमें भरपूर ध्यान दिया गया है। विशेषतः सीताहरणके बादकी कथामें ये पाँच कार्यावस्थाएँ उत्कृष्ट रूपसे हमें प्रतीत होती हैं और उनके कारण आधिकारिक कथावस्तुकी रोचकता क्रमशः बढ़ती ही जाती है। इन पाँच अवस्थाओंके बाद जब 'फलयोग'—(समग्रफलसम्पत्तिः फलयोगो यथोदितः)—यानी प्रभु रामचन्द्रका अयोध्याके रिक्त सिंहासनपर राज्याभिषेक होता है, तब रामायणके प्रत्येक वाचकका अन्तःकरण आनन्दसे ओत-प्रोत हो जाता है। इसी परमानन्दके लिये पाठकगण रामायणका अवगाहन करते हैं। रामायणके महनीय लेखकने नाट्यतत्त्वोंका कथाविषयक पूरा-पूरा अवधान रखते हुए कथा लिखी है और इसी कारण वह संसारके समस्त सहृदयोंके लिये आनन्ददायिनी सिद्ध हुई है।

उपरिनिर्दिष्ट पाँच अर्थप्रकृतियों और पाँच अवस्थाओंके यथाक्रम समन्वयसे प्रसन्न (१) मुख, (२) प्रतिमुख, (३) गर्भ, (४) अवमर्श और (५) उपसंहार नामक पाँच संधियोंमें कथावस्तुकी व्यवस्था नाट्यशास्त्रमें आवश्यक मानी गयी है। रूपकोंके दस प्रकारोंमें नाटक तथा प्रकरण नामक दो प्रकार श्रेष्ठ माने जाते हैं, जिनमें पाँचों संधियाँ होती हैं। इनके अतिरिक्त भाण-व्यायोगादि गौण-रूपक-प्रकारोंमें कम-से-कम एक और अधिक-से-अधिक चार संधियाँ होती हैं। रामायणकी आधिकारिक कथावस्तुमें पाँच संधियाँ स्पष्ट दिखायी देती हैं और अन्यान्य प्रासङ्गिक कथाओंमें यथावसर एक, दो या तीन संधियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। यही कारण है कि जिससे रामायणके सारे आख्यान-उपाख्यान सुनते या पढ़ते समय हमें आरम्भसे अन्ततक आनन्द मिलता है।

प्रस्तुत सीमित लेखमें रामायणकी आधिकारिक तथा प्रासङ्गिक कथावस्तुओंका पञ्च अर्थप्रकृति, पञ्च अवस्था तथा पञ्च संधियोंकी दृष्टिसे सविस्तर विमर्श करना असम्भव है। साथ ही रामचरित्रका नाट्यशास्त्रीय दृष्टिसे विमर्श करनेके लिये नायक-नायिका, रस इत्यादिकी दृष्टिसे सविस्तर विमर्श करना आवश्यक है। इस लेखमें वह असम्भव है। तथापि हम निश्चितरूपसे यह कह सकते हैं कि महर्षि वाल्मीकिने नाटकीय तत्त्वोंका पूरा अवधान रखकर ही अपनी रामकथा लिखी और उसीके कारण उसमें विश्वजनीन रोचकता निर्माण हुई है।

मेरी दृष्टिमें तुलसीके राम

(लेखक—श्रीबालकोबा भावे)

मैं पूज्य गांधीजीके साबरमती आश्रममें सन् १९१९ से १९३१ तक बारह साल रहा। उस समय मुझे ज्ञात हुआ कि संत तुलसीदासजीकी रामायण—रामचरितमानसपर पूज्य गांधीजीकी श्रद्धा, जब वे दक्षिण अफ्रिकामें थे, तभीसे थी। दक्षिण अफ्रिकामें उन्होंने तुलसी-रामायणके उत्तम अंशोंका चुनाव शुरू किया और वहाँपर बालकाण्डके चुने हुए अंश पुस्तकके रूपमें छप भी गये थे। वह पुस्तक सेवाग्राममें मुझे देखनेको मिली थी। समयाभावके कारण आगेके अंशोंका चुनाव वे नहीं कर सके।

सन् १९३१के बाद मैं पूज्य विनोबाजीद्वारा स्थापित वर्धा आश्रममें रहने आया, तब मुझे तुलसी-रामायण पढ़नेकी प्रेरणा हुई और मैं मराठी अनुवादके साथ पूरी रामायण पढ़ भी गया। मगर उनका यह कथन कुछ जँचा नहीं कि 'सारे ब्रह्माण्डमें परिव्याप्त जो परमात्मा है, वही अयोध्यानिवासी दशरथके पुत्र श्रीरामचन्द्रजी हैं।' लेकिन एक सालके बाद जब मैंने फिरसे रामायणको बारीकीसे पढ़ा, तब बालकाण्डकी नीचे दी हुई चौपाइयों तथा दोहेके पढ़नेसे मेरी धारणा बदल गयी। चौपाइयाँ इस प्रकार हैं—

कथा अलौकिक सुनहिं जे ग्यानी। नहिं आचरजु करहिं अस जानी॥
रामकथा कै मिति जग नाहीं। असि प्रतीति तिन्ह के मन माहीं॥
नाना भाँति राम अवतारा। रामायन सत कोटि अपारा॥
कलप भेद हरि चरित सुहाए। भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए॥

× × ×

राम अनंत अनंत गुन अमित कथा बिस्तार।
सुनि आचरजु न मानिहहिं जिन्ह कें बिमल बिचार॥

× × ×

अति बिचित्र रघुपति चरित जानहिं परम सुजान।
जे मतिमंद बिमोह बस हृदयँ धरहिं कछु आन॥

(मानस १ । ३२ । २–३½; ३३; ४९)

राम नाम गुन चरित सुहाए। जनम करम अगनित श्रुति गाए॥
जथा अनंत राम भगवाना। तथा कथा कीरति गुन नाना॥

(मानस १ । ११३ । २)

जासु कृपाँ अस भ्रम मिटि जाई। गिरिजा सोइ कृपाल रघुराई॥
आदि अंत कोउ जासु न पावा। मति अनुमानि निगम अस गावा॥
बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा॥
असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी॥

(वही, १ । ११७ । २–४)

'राम ब्रह्म चिनमय अबिनासी। सर्ब रहित सब उर पुर बासी॥'

(वही, १ । ११९ । ३)

'अति प्रचंड रघुपति कै माया। जेहि न मोह अस को जग जाया॥'

(वही, १ । १२७ । ४)

'हरि अनंत हरि कथा अनंता। कहहिं सुनहिं बहु बिधि सब संता॥'

(वही, १ । १३९ । २½)

उपर्युक्त वचन अयोध्यानिवासी नरदेहधारी रामचन्द्रको लक्ष्य करके नहीं कहे गये हैं। ये वचन सारे ब्रह्माण्डमें पूर्णतः परिव्याप्त परमात्माके अनुसंधानमें ही कहे गये हैं, ऐसा मनमें स्पष्ट हुआ।

सन् १९३३ सालमें पूज्य गांधीजी पूज्य विनोबाजीद्वारा संचालित वर्धा आश्रममें रहे थे। सात साल मैंने संगीतका अभ्यास किया है और साबरमती आश्रममें मैं प्रार्थनाके समय भजन बोला करता था, यह सब पूज्य गांधीजी जानते ही थे। अतः एक दिन उन्होंने मुझे कहा कि 'दक्षिण अफ्रिकामें जो सज्जन तुलसी-रामायण मुझे जिस रागमें गाकर सुनाया करते थे, मुझे वही राग अच्छा लगता है। वह राग तुम भी सीख लो और रोजाना सुबह आधा घंटा मुझे उसी रागमें रामायण सुनाया करो।' वह राग उनके पुत्र स्व० देवदास गांधीको आता था। उनसे सुनकर मैंने उस रागको सरगमपर बैठा लिया। बादमें थोड़ा संगीत जाननेवाली दो बहनोंको भी सिखा दिया। हम तीनों सुबह सात बजे रामायण सुनाने गये। वनवासका प्रसङ्ग था। श्रीरामचन्द्रजी आश्रममें आये और उन्होंने वाल्मीकि ऋषिसे प्रार्थना की कि 'आप हमें कोई ऐसा स्थान बताइये, जहाँ कुटिया बनाकर हम कुछ दिन निवास कर सकें।' वाल्मीकि ऋषिने पहले भक्तोंके हृदयमें निवास करनेकी बात कहकर फिर चित्रकूट स्थान बताया। वह वर्णन अति सुन्दर है। उसे सुननेके बाद पू० गांधीजी बोले—'फिरसे सुनाओ।' वह वर्णन इस प्रकार है—

काम कोह मद मान न मोहा । लोभ न छोभ न राग न द्रोहा ॥
जिन्ह कें कपट दंभ नहिं माया । तिन्ह कें हृदय बसहु रघुराया ॥
सब के प्रिय सब के हितकारी । दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी ॥
कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी । जागत सोवत सरन तुम्हारी ॥
तुम्हहि छाड़ि गति दूसरि नाहीं । राम बसहु तिन्ह के मन माहीं ॥
जननी सम जानहिं परनारी । धन पराव बिष तें बिष भारी ॥
जे हरषहिं पर संपति देखी । दुखित होहिं पर बिपति बिसेषी ॥
जिन्हहि राम तुम्ह प्रान पिआरे । तिन्ह के मन सुभ सदन तुम्हारे ॥

स्वामि सखा पितु मातु गुर जिन्ह के सब तुम्ह तात ।
मन मंदिर तिन्ह कें बसहु सीय सहित दोउ भ्रात ॥

अवगुन तजि सब के गुन गहहीं । बिप्र धेनु हित संकट सहहीं ॥
नीति निपुन जिन्ह कइ जग लीका । घर तुम्हार तिन्ह कर मन नीका ॥
गुन तुम्हार समुझइ निज दोषा । जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा ॥
राम भगत प्रिय लागहिं जेही । तेहि उर बसहु सहित बैदेही ॥
जाति पाँति धनु धरमु बड़ाई । प्रिय परिवार सदन सुखदाई ॥
सब तजि तुम्हहि रहइ उर लाई । तेहि के हृदयँ रहहु रघुराई ॥
सरगु नरकु अपबरगु समाना । जहँ तहँ देख धरें धनु बाना ॥
करम बचन मन राउर चेरा । राम करहु तेहि कें उर डेरा ॥

जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु ।
बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहु ॥
(वही, २ । १२९ । १–४ से १३१)

यह वर्णन बोधप्रद और प्रासादिक है । इस तरह जगह-जगहपर रामायणमें व्यापक परमात्माकी महिमा गायी गयी है । ऐसे वर्णनोंको पढ़नेसे मेरे ध्यानमें यह पूरी तरहसे आ गया कि सामान्य आदमियोंके लिये सहज बोधगम्य बनानेके उद्देश्यसे अयोध्यानिवासी दशरथके पुत्र प्रभु रामचन्द्र जो सारे ब्रह्माण्डमें परिव्याप्त परमात्माके अवतारी पुरुष हैं, उनकी स्थूल कथाको सर्वसाधारण लोगोंके सामने रखनेके बहाने व्यापक परमात्माकी महिमाको गाकर, सबको उसी अलौकिक परमात्माके सामने झुकानेकी कोशिश की गयी है । इस विचारके स्पष्ट होनेके बाद तुलसी-रामायणपर मेरी श्रद्धा सुदृढ़ हो गयी और सारी रामायणमेंसे उत्तम अंशोंका चुनाव करके उन चुने हुए दोहे-चौपाइयोंको मैंने काफी कण्ठस्थ भी कर लिया ।

ज्ञानी पुरुषका सहज लक्षण नम्रताकी पराकाष्ठा होना चाहिये । रामचन्द्रजीका जो चित्र तुलसी-रामायणने प्रस्तुत किया है, उसमें यह लक्षण सती-प्रसङ्गमें स्पष्टरूपसे प्रकट हुआ है । बालकाण्डमें वर्णन आता है—जब रामचन्द्रजी सीताजीको खोजते हुए वनमें भटक रहे थे, तब शंकरजी रामचन्द्रजीको रास्तेमें देखते ही बोल पड़े—'जय सच्चिदानन्द जग पावन।' (मानस १ । ४९ । १$\frac{3}{4}$) यह कहकर चलते हुए उनका शरीर पुलकायमान हो रहा था और बार-बार रामचन्द्रजीके स्मरणसे मनमें प्रेम पैदा हो रहा था । इन लक्षणोंको देखकर सतीके मनमें यह विचार आया कि 'जो व्यापक ब्रह्म है, क्या वह देह धारण करके प्रकट हो सकता है और यदि ऐसा सम्भव है तो सर्वत्र व्याप्त एवं सबके अंशीरूप रामचन्द्रजी सीताकी खोजमें अज्ञानी व्यक्तिकी तरह क्यों लगे हुए हैं ?' ऐसे देहधारी पुरुष रामचन्द्रजीको देखकर, श्रीशंकरके मुँहसे उपर्युक्त वचन निकलना और उनके शरीरका पुलकायमान होना आदिमें क्या वास्तविकता है, यह सतीकी समझमें ठीक प्रकारसे नहीं आया । सतीके मनमें इस प्रकारके विचार चल रहे थे । शंकरजीने इस बातको जान लिया और सतीसे कहा—'यदि तुम्हें रामचन्द्रजीके बारेमें शङ्का होती है कि ये परमात्माके अवतार कैसे हो सकते हैं तो तुम उनकी परीक्षा क्यों नहीं ले लेती ?' यह सुनकर परीक्षा लेनेकी दृष्टिसे सती सीताका वेष धारण करके, जिस रास्तेसे रामचन्द्रजी आ रहे थे, उसी रास्तेसे उनके सामने होकर निकलीं । सतीने सीताजीका वेष धारण किया है—यह रामचन्द्रजीने पहचान लिया और बड़ी नम्रतासे इस प्रकार बोले—

जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू । पिता समेत लीन्ह निज नामू ॥
कहेउ बहोरि कहाँ बृषकेतू । बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू ॥
(वही, १ । ५२ । ४)

यह वचन सुनते ही—

राम बचन मृदु गूढ़ सुनि उपजा अति संकोचु ।
सती सभीत महेस पहिं चलीं हृदयँ बड़ सोचु ॥

मैं संकर कर कहा न माना । निज अग्यानु राम पर आना ॥
जाइ उतरु अब देहउँ काहा । उर उपजा अति दारुन दाहा ॥
(वही, १ । ५३; १ । ५३ । १)

तुलसी-रामायण अत्यन्त प्रासादिक भक्तिसे भरा हुआ ग्रन्थ है । बार-बार पढ़ते हुए कभी थकावट या ऊब महसूस नहीं होगी । संत तुलसीदासजी भक्तहृदय होनेसे मानशून्यताकी पराकाष्ठाको पहुँचे हुए पुरुष थे । गांधीजीमें भी इस

मान-शून्यताकी पराकाष्ठा उनके दीर्घकालके सहवासमें मैंने अनुभव की।

संत तुलसीदासजी अपने बारेमें वर्णन कर रहे हैं—

जे जनमे कलिकाल कराला। करतब बायस बेष मराला॥
चलत कुपंथ बेद मग छाँड़े। कपट कलेवर कलिमल भाँड़े॥
बंचक भगत कहाइ राम के। किंकर कंचन कोह काम के॥
तिन्ह महँ प्रथम रेख जग मोरी। धींग धरमध्वज धंधक धोरी॥
जौं अपने अवगुन सब कहऊँ। बाढ़इ कथा पार नहिं लहऊँ॥
ताते मैं अति अलप बखाने। थोरे महु जानिहहिं सयाने॥
कबि न होउँ नहिं चतुर कहावउँ। मति अनुरूप राम गुन गावउँ॥
कहँ रघुपति के चरित अपारा। कहँ मति मोरि निरत संसारा॥

(वही, १। ११। १-३, ४४½)

श्रीरामके चरित्रपर कतिपय आक्षेप और उनका समाधान

(लेखक—श्रीतारिणीशजी झा, व्याकरण-वेदान्ताचार्य)

त्रिकालदर्शी ब्रह्मर्षि वाल्मीकिने अपने रामायण-महाकाव्यमें मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रके आदर्श चरित्रका चित्रण किया है। इस महाकाव्यमें चित्रित श्रीरामकी लीला—पुत्र-मर्यादा, भ्रातृ-मर्यादा, न्याय-मर्यादा, ब्रह्मचर्य-मर्यादा, सत्य-मर्यादा आदि कतिपय मर्यादाओंसे पूर्ण है। इस कारण तथा वेदादि शास्त्रोंके प्रमाणसे हम भगवान् श्रीरामचन्द्रको परमात्माके मर्यादावतार या पूर्णावतार मानते हैं।

यहाँ हम रामावतारके सम्बन्धमें किये जानेवाले कतिपय आक्षेपोंका निराकरण वाल्मीकि-रामायणके आधारपर करेंगे।

कुछ लोगोंका कहना है कि 'राम ईश्वरके अवतार नहीं थे; क्योंकि वाल्मीकिने इनको ऐसा नहीं माना है।'

यह कथन नितान्त असंगत है। यदि वाल्मीकिने श्रीरामको अवतारी नहीं माना तो अपनी रामायणमें बीसियों जगह इनके अवतारी होनेकी बात कैसे लिखी! उदाहरणके लिये देखिये, वाल्मीकिरामायण, बालकाण्ड के १५वें अध्यायके ये श्लोक—

दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च॥
वत्स्यामि मानुषे लोके पालयन् पृथिवीमिमाम्।
एवं दत्त्वा वरं देवो देवानां विष्णुरात्मवान्॥
मानुष्ये चिन्तयामास जन्मभूमिमथात्मनः।

(२९-३१)

अर्थात् 'मैं दस हजार वर्ष और दस सौ वर्षतक इस पृथ्वीका पालन करते हुए मनुष्यलोकमें निवास करूँगा।'—इस प्रकार देवताओंको वरदान देकर श्रीविष्णु मनुष्य-योनिमें अपने जन्म ग्रहणकी बात सोचने लगे।

फिर कुछ लोग आक्षेप करते हैं कि—'ताटकाका वध करके रामने स्त्री-हत्याका पाप क्यों किया? वालीको छिपकर क्यों मारा? शूर्पणखाको विरूप क्यों किया? सीताकी अग्नि-परीक्षा कराकर फिर उन्हें निर्वासित क्यों किया? यदि रामचन्द्र साक्षात् भगवान्के अवतार थे तो ऐसे अनुचित कार्य उन्होंने क्यों किये?'

उपर्युक्त प्रश्नोंका उत्तर क्रमशः इस प्रकार प्रस्तुत किया जा रहा है—

श्रीरामचन्द्रने ताटकाको अपनी इच्छासे नहीं मारा। ऋषि विश्वामित्रने उनसे आग्रह किया था कि 'इसे अवश्य मारिये। अत्यन्त पापिनी स्त्रीकी हत्या करना राजाका धर्म है। यह राक्षसी निरपराध ऋषियोंको बहुत सताती है। इसलिये इसे मारनेमें कोई दोष नहीं है। पहलेके राजाओंने भी ऐसी नृशंस स्त्रियोंको मारा है। उन्हें कोई पाप नहीं लगा।' ऋषिकी बात सुनकर श्रीराघवेन्द्रने सोचा—"ऋषियोंके वचन ही धर्मशास्त्र हैं। विश्वामित्र महर्षि स्वयं कह रहे हैं और पिताजीकी भी आज्ञा है कि 'महर्षि विश्वामित्र जो कुछ कहें, वह बिना विचारे करना।' ऐसी स्थितिमें मुझे ताटकाका वध करना ही होगा।" बस, यही कारण है कि श्रीरामने ताटकाका वध किया।

दूसरा प्रश्न है कि 'वालीको छिपकर क्यों मारा?' इसका उत्तर वाल्मीकिरामायणके किष्किन्धाकाण्डके १८ सर्गमें दिया गया है।

वहाँके कथनसे सिद्ध होता है कि भगवान्ने वालीको राजदण्ड दिया था न कि उसके साथ युद्ध किया था, जिससे युद्धका नियम लागू होता। अथवा यदि युद्ध

ही मान लिया जाय तो भी उनका यह युद्ध संकुल-युद्ध था न कि द्वन्द्व-युद्ध; क्योंकि वाली रावणका मित्र एवं अपने सखा सुग्रीवका शत्रु होनेके कारण भगवान् रामका शत्रु था और राम-रावणका युद्ध 'संकुल-युद्ध' माना गया है । इस दृष्टिसे राम-वालीका युद्ध भी 'संकुल-युद्ध' माना जायगा । इस युद्धमें द्वन्द्व-युद्धकी तरह शत्रुके मारनेके नियम नहीं हैं । इसमें तो, चाहे किसी भी रीतिसे हो, शत्रुका मारना या उसकी सामर्थ्य कम करना ही कर्तव्य निर्धारित किया गया है । इसलिये रामने उसे छिपकर क्यों मारा या उसका सामना क्यों नहीं किया, यह प्रश्न ही नहीं उठता ।

तीसरे प्रश्नके उत्तरके सम्बन्धमें वाल्मीकि-रामायण, अरण्यकाण्डके १८वें सर्गका अध्ययन करनेसे पता चलता है कि शूर्पणखा कामवश होकर तथा सीताजीको अपने मार्गका कण्टक समझकर उन्हें खा जानेके लिये तैयार हो चुकी थी । इस कारण वह वध्य थी । फिर भी करुणासागर श्रीरामने उसे प्राण-दण्ड न देकर केवल विरूप करवा दिया । यह तो उसका उपकार ही हुआ । ऐसी स्थितिमें उसको विरूप क्यों किया, यह प्रश्न ही अनर्गल है ।

चौथे प्रश्नका उत्तर यह है कि मर्यादापुरुषोत्तम रामने भगवती सीताको उनके सतीत्वमें संदेह करके वनवास नहीं दिया, बल्कि जनापवादकी निवृत्तिके लिये अत्यन्त दुःखके साथ सीताका परित्याग किया; क्योंकि श्रीराम लोकाराधक राजा थे । लोकाराधनके लिये वे सब कुछ त्याग सकते थे । महाकवि भवभूतिने उनके बारेमें लिखा है—

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि ।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ॥
(उत्तररामचरित १ । १२)

अर्थात् 'प्रजाओंके अनुरञ्जन या संतोषके लिये स्नेह, दया अथवा जानकीतकको छोड़नेमें मुझे कष्ट नहीं है ।'

उस समयकी साधारण जनताको सीताकी अग्नि-परीक्षामें विश्वास नहीं हुआ था । इसलिये वह सीताजीकी शुद्धिपर काना-फूसी करने लग गयी थी । यह बात मर्यादापुरुषोत्तमके लिये असह्य थी । अतएव उन्होंने तत्काल सीताजीको राजमहलसे हटाकर वाल्मीकिमुनिके आश्रममें भिजवा देना ही उचित समझा ।

इस प्रकार भगवान् श्रीरामके चरित्रपर जो कुछ भी आक्षेप किये जाते हैं, वे सब अवास्तविक हैं । महाकवि कालिदासने अपने कुमारसम्भव महाकाव्यमें लिखा है—'द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम्' (५ । ७५) अर्थात् मूर्खलोग महापुरुषोंके चरित्रपर आक्षेप किया करते हैं । भगवान् श्रीराम कैसे महापुरुष थे, इसे महानाटककारके शब्दोंमें, जिसे उन्होंने श्रीदशरथके मुखसे कहलाया है, पढ़िये—

आहूतस्याभिषेकाय विसृष्टस्य वनाय च ।
न मया लक्षितस्तस्य स्वल्पोऽप्याकारविभ्रमः ॥
(३ । २५)

अर्थात् जब मैंने रामको राज्याभिषेकके लिये बुलाया और जब वनमें वास करनेके लिये भेजा, दोनों समय उनके चेहरेपर तनिक भी अस्थिरता नहीं देखी ।

हे राम ! मेरा उद्धार क्यों नहीं करते ?

अहल्या पाषाणः प्रकृतिपशुरासीत् कपिचमू-
र्गुहोऽभूच्चण्डालस्त्रितयमपि नीतं निजपदम् ।
अहं चित्तेनाश्मा पशुरपि तवार्चादिकरणे
क्रियाभिश्चण्डालो रघुवर न मामुद्धरसि किम् ॥

—रहीम खानखाना

अहल्या पाषाण बनी हुई थी, बंदरोंकी सेना प्रकृतिसे पशु थी और गुह चण्डाल (अस्पृश्य) था । तीनोंको आपने निज लोकमें स्थान दिया । इधर मैं चित्तसे पत्थर हूँ, आपकी पूजादि करनेमें पशु हूँ और क्रियासे चण्डाल हूँ । यद्यपि मुझमें उक्त तीनों गुण हैं; फिर भी हे राम ! मेरा उद्धार क्यों नहीं करते ?

व्रजमें श्रीरामभक्ति

(लेखक—पं० श्रीरामदासजी शास्त्री)

लोकाभिराम श्रीरामकी कल्याणमयी पावन भक्तिसे व्रजभूमि सदा ही अनुप्राणित रही है। व्रजभूमिमें जन्मनेवाले अथवा यहाँके प्रवासी साधक-संतोंने भी लोकोत्तर पुरुषोत्तम श्रीरामके गुणानुवाद गाये हैं।

व्रजभूमिमें श्रीरामभक्तिका एक अनोखा रूप दिखायी देता है। व्रजवासियोंकी अपनी एकान्त-साधनामें, उनके अन्तर्हृदयकी गुह्य उपासनामें, जहाँ श्रीकृष्णका ही रूप प्रतिबिम्बित होता है, वहाँ उनका बाह्य लौकिक जीवन, व्यावहारिक समाजपद्धति तथा सामान्य लोकाचार श्रीरामके आदर्शोंसे व्याप्त प्रतीत होता है।

यद्यपि ऐतिहासिक दृष्टिसे रामायण-प्रणेता ऋषि वाल्मीकि एवं पुराणप्रणेता श्रीवेदव्यासमें लंबे समयका अन्तर है, फिर भी कृष्णावतारसे पूर्वतक माथुर-प्रदेशोंमें श्रीरामभक्तिका प्रचुर प्रभाव दिखायी देता है। पुराणोंमें इसकी झलक स्पष्ट है। स्वयं श्रीकृष्ण भी अपनी बाललीलाओंमें श्रीरामचरित्रका अनुकरण 'राम-रावण-युद्ध'के रूपमें करते थे। कामवन आदिमें सेतुबन्ध और लङ्का-दहनके स्थान श्रीकृष्णलीलाके अङ्ग माने जाते हैं। शान्ति एवं स्वान्तःसुखके उद्देश्यसे प्रणीत श्रीमद्भागवतमें वेदव्यासजीने नवमस्कन्धके अतिरिक्त एकादशमें भी श्रीरामको गौरवपूर्ण शब्दोंमें स्मरण किया है—

> त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं
> धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम्।
> मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद्
> वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्॥
> (११। ५। ३४)

'भगवन्! आपके चरणकमलोंकी महिमा कौन कहे! रामावतारमें अपने पिता दशरथजीके वचनोंसे देवताओंके लिये भी वाञ्छनीय और दुस्त्यज राज्यलक्ष्मीको छोड़कर आपके चरणकमल वन-वन घूमते फिरे! सचमुच आप धर्मनिष्ठताकी सीमा हैं और महापुरुष! अपनी प्रेयसी सीताजीके चाहनेपर जान-बूझकर आपके चरणकमल मायामृगके पीछे दौड़ते रहे! सचमुच आप प्रेमकी सीमा हैं! प्रभो! मैं आपके उन्हीं चरणारविन्दोंकी वन्दना करता हूँ।'

श्रीकृष्णावतारसे आजतक अनेक कृष्णभक्त संतों, भक्तों तथा कवियोंने श्रीरामभक्तिका वर्णन किया है। व्रजलीलाका तात्त्विक एवं रसमय विवेचन जितना गौड़ीय-सम्प्रदायके आचार्य षड्गोस्वामियोंने किया है, उतना स्यात् ही कहीं हो। वे भी श्रीरामभक्तिसे अप्रभावित नहीं हैं। 'बृहद्भागवतामृत'-के रचयिता श्रीसनातनगोस्वामीने तो श्रीकृष्णप्राप्तिकी अनुकूलतामें श्रीरामकी कृपाको सिद्धान्ततः स्वीकार किया है। वे गोपकुमारके अयोध्याप्रवेशके समय कहते हैं—

> श्रीरामपादाब्जयुगेऽवलोकिते
> शाम्येन्न चेत् सा तव दर्शनोत्सुका।
> तेनैव कारुण्यभरार्द्रचेतसा
> प्रहेष्यते द्वारवतीं सुखं भवान्॥
> (बृहद्भा० २। ४। २४५)

'यदि श्रीरघुनाथजीके चरण-दर्शनसे आपकी अपने इष्ट श्रीकृष्णके दर्शनके प्रति उत्कण्ठा निवृत्त नहीं हुई तो वे श्रीरामके करुणार्द्रहृदय आपको सुखपूर्वक द्वारका भेज देंगे।'

गौड़ीय-सम्प्रदायके एक अन्य आचार्य श्रीगोपालभट्ट गोस्वामीने अपने 'हरिभक्तिविलास' ग्रन्थमें 'रामनवमी-व्रत-प्रकरण'में कहा है कि जो रामनवमीके दिन अन्न भोजन करता है, उसे कुम्भीपाक-नरककी प्राप्ति होती है—

> यस्तु रामनवम्यां हि भुङ्क्ते मोहाद् विमूढधीः।
> कुम्भीपाकेषु घोरेषु पच्यते नात्र संशयः॥

उन्होंने जन्माष्टमी और एकादशी-व्रतकी भाँति 'रामनवमी-व्रत'के माहात्म्यमें श्रीराम-कृष्णमें अभेद माना है। व्रजमें रामनवमीका त्यौहार भी घर-घर मनाया जाता है। अयोध्या आदिमें तो अनेक लोग उस दिन मध्याह्नमें ही जन्मोपरान्त अन्नभोग लगाते हैं, परंतु व्रजके गौड़ीय संत अष्टप्रहरपर्यन्त निष्ठाके साथ व्रती रहते हैं। दूसरे दिन ही अन्नप्रसाद लेते हैं। व्रजके गौड़ीय वैष्णवोंमें श्रीरामभक्तिका बड़ा समादर है। वे रामनवमीके दिन श्रीचैतन्यमहाप्रभुको श्रीरामका राजवेष धारण कराके उनके आगे नृत्य करते हैं।

व्रजमें श्रीकृष्णका अनन्यनिष्ठासे भजन करनेवाले वल्लभसम्प्रदायी वैष्णवोंने भी श्रीरामका गुण-गान किया है। अष्टछापके कवि संत सूरदास, नन्ददास आदिके पदोंमें

श्रीरामचरित्र वर्णित है। सूरदासजीने तो सम्पूर्ण रामचरित्र-गायनके पश्चात् श्रीरामके दरबारमें अपनी पहुँचको असम्भव बताकर चिट्ठी लिखनेकी ठान ली है—

बिनती केहि बिधि प्रभुहि सुनाऊँ।
महाराज रघुबीर धीर कौ समय न कबहूँ पाऊँ॥
जाम रहत जामिनि के बीतें, तिहि औसर उठि धाऊँ।
सकुच होत सुकुमार नींद तें, कैसें प्रभुहि जगाऊँ॥
दिनकर-किरन उदित ब्रह्मादिक, रुद्रादिक इक ठाऊँ।
अगनित भीर अमर-मुनि-गन की, तिहि तें ठौर न पाऊँ॥
उठत सभा दिन मध्य सियापति, देखि भीर फिरि आऊँ।
न्हात-खात सुख करत साहिबी, कैसें करि अनखाऊँ॥
रजनी-मुख आवत गुन गावत नारद-तुम्बुरु नाऊँ।
तुमही कहौ कृपन हौं रघुपति किहि बिधि दुख समझाऊँ॥
एक उपाय करौं कमलापति, कहौ तो कहि समझाऊँ।
पतित-उधारन 'सूर' नाम प्रभु, लिखि कागद पहुँचाऊँ॥
(सूर-रामचरितावली १९८)

वल्लभ-सम्प्रदायके भक्तोंमें एक रामभक्तका रोचक उदाहरण मिलता है। श्रीवल्लभाचार्यजीसे कृष्णदीक्षाप्राप्त उनका एक सेवक श्रीरामदर्शनके लिये तड़फड़ाता रहता था। उसकी तीव्र अभिलाषा देखकर गोस्वामीजीने उसे अयोध्या जानेकी आज्ञा प्रदान कर दी। भक्त अयोध्या पहुँचा; श्रीरामके भोले-सलोने गम्भीर मुखारविन्दका अवलोकन कर स्तब्ध रह गया। बार-बार प्रार्थना करनेपर भी सकुचीले श्रीरामने उसपर दृष्टि नहीं डाली। भक्तका मन खिन्न हो गया। 'यह कैसा भगवान् है—जो न देखता है, न सुनता है! इससे अच्छे तो मेरे श्रीनाथ (कृष्ण)जी ही हैं—चञ्चल नेत्र, त्रिभङ्गललित, नटखट।' और वह श्रीरामको पीठ देकर खड़ा हो गया। उसी समय उसके शरीरसे कोढ़ फूट पड़ा। भक्तको अनुभव हुआ कि 'मुझसे अपराध हुआ है।' भक्तने पुनः श्रीरामसे प्रार्थना की—'प्रभो! मेरे शरीरमें कीड़े और पड़ जायँ, तभी अपराधका प्रायश्चित्त होगा।' करुणा-वरुणालय श्रीरामने दृष्टि उठायी और कहा—'भक्त! मेरी ओर देख।' तभी उसे श्रीरामके विग्रहमें श्रीनाथ (श्रीकृष्ण)जीके दर्शन हुए।

व्रजभावनाके उपासक अन्य सम्प्रदायोंमें भी श्रीराम-भक्तिका उल्लेख हुआ है। विस्तारभयसे लिखना सम्भव नहीं। एक और प्राचीन रामभक्त संत श्रीरामसखेजीका नाम व्रजमें प्रसिद्ध है। प्रथम उन्होंने अयोध्यामें श्रीराममन्त्रकी दीक्षा ली। जब व्रजदर्शनको आये तो रासविहारीके रासको देखकर लट्टू हो गये। व्रजमें ही रम गये। अयोध्यासे गुरुजीने पत्र लिखा कि 'हमारे रघुनाथजीके घरमें कौन-सी वस्तु कम थी, जो तुम्हें व्रजमें मिली है?' उन्होंने उत्तरमें यह दोहा लिखकर भेज दिया—

कहा कमी रघुनाथ घर, क्यों यह छोड़ी बान।
मन बैरागी हो गया, सुनि मुरली की तान॥

पीछे रामसखेजी व्रजसे नहीं गये। नन्दगाँव, बरसाना और गोवर्धनकी उपत्यकामें भ्रमण करते, विरहमें श्रीकृष्णको पुकारा करते थे—

अरे सिकारी निर्दयी करिया नंदकिसोर।
क्यों तरसावत दरस कों रामसखे-चित-चोर॥

रामसखेजी श्रीरामको भी अपना सखा मानते हैं—

बाँको हमारो यार साँवलिया।
बाँकी लटपटि पीत लपेटें, बाँकी बाँधें तलवार सँवलिया॥
बाँके सीस जरी की पगिया, बाँके घोड़े असवार सँवलिया।
'रामसखे' को मन हर लीनो दसरथसुत सरदार सँवलिया॥

इसी प्रकारके कई रामभक्त संत और भी हैं, जिन्होंने व्रजमें वास करके श्रीराम और कृष्णकी समान आराधना की है। ऐसे संतोंमें श्रीरामदास, कान्हरदास, मेहरदास आदि उल्लेखनीय हैं।

श्रीरामदासजी तो राजा रामसे अपनी गोविन्दचरणविषयक प्रीतिकी प्रतिज्ञाको निबाहनेकी प्रार्थना करते हैं—

मेरी प्रीति गोविंद सों ना घटै।
मैं तो मोल मँहगे में लीनो, मेरो चित न हटै॥

अन्तमें वे कहते हैं—

'कहत रामदास इक बिनती प्रभु सों, पैज राखो राजाराम मेरी।'

व्रजके लोकजीवनमें श्रीरामभक्तिकी छाप प्रत्यक्ष दीखती है। यहाँके प्रत्येक नगर-ग्रामके मन्दिरोंमें श्रीराधाकृष्णके साथ श्रीसीतारामके विग्रह भी स्थापित हैं। अनेक प्राचीन मन्दिरोंमें केवल श्रीसीतारामके ही स्वरूप हैं। प्रातः-सायं ग्रामीण नर-नारी मन्दिरोंमें बैठकर रामनामकी माला जपते हैं। वे परस्पर एक-दूसरेको 'राम-राम जी, राम-राम' कहकर अभिवादन करते हैं। वे शोक-मोहमें अथवा अन्य संकटकी घड़ियोंमें 'राम-राम' उच्चारण करते हैं। व्रजके ग्राम-ग्राममें

रामलीलाओंके आयोजन बड़े उत्साह एवं उल्लासके साथ होते हैं। मथुराके चौबे-समाजमें रामलीला-अभिनय सदियोंसे चला आ रहा है। व्रजके भिन्न-भिन्न स्थानोंपर रामचरितमानसकी कथाके नवाह्नपारायण होते ही रहते हैं। वृन्दावनमें श्रीराम-उपासकोंके कई ऐतिहासिक स्थल हैं, जिनमें ज्ञानगुदड़ी, खाकचौक, रामबाग आदि प्रमुख हैं। स्वामी संकर्षणदासजीने गोवर्धनकी तरैटीमें लंबे समयतक तपस्या की थी। मानस-प्रचारके वर्तमान स्वरूपको अग्रसर करनेमें वृन्दावनवासी गोस्वामी बिन्दुजीका नाम लिया जाता है। आज भी मानस-चतुश्शतीके उपलक्ष्यमें गौड़ीय सम्प्रदायके प्रमुख स्थान चार-सम्प्रदाय आश्रममें तथा सुदामाकुटीमें अनुष्ठान चल रहा है। इसी प्रकार श्रीइन्दुगोस्वामीने भी मानस-चतुश्शतीका विशाल आयोजन चला रखा है। इस प्रकार व्रजके लोग अन्तर्हृदयमें श्रीकृष्णको अपना सगा-सम्बन्धी मानते हुए भी व्यावहारिक जीवनमें श्रीरामको ही आदर्श मानकर चलते हैं।

व्रजप्रदेशमें श्रीरामभक्तिके अप्रत्याशित प्रभावका श्रीगणेश सदियों पूर्व गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीके व्रजागमनसे ही माना जायगा। इतिहासको देखनेसे पता चलता है कि गोस्वामी तुलसीदासजी कई बार व्रजमें आये थे। लगता है, एक बार उन्होंने पूरे व्रजकी यात्रा की थी। एक बार वे गोकुल-महावन पधारे थे और एक बारकी यात्रामें उन्होंने ज्ञानगुदड़ीमें निवास कर रामचरितमानसकी कथा भी कही थी। उक्त धारणाएँ गोस्वामीजीके विभिन्न चरित्रोंसे ही पुष्ट होती हैं। 'बावन वैष्णवोंकी वार्ता' और बेनीमाधवलिखित गोस्वामीजीकी जीवनीसे यही ध्वनि निकली है। ज्ञानगुदड़ीमें वह स्थान आज भी जर्जर अवस्थामें विद्यमान है, जहाँ गोस्वामीजी संत परशुरामजीके स्थानमें आकर ठहरे थे, जहाँ उन्हें एक विनोदपूर्ण परिहासमें श्रीराधाकृष्णके विग्रहमें श्रीरामके दर्शन हुए थे। यह दोहा उसी समयसे प्रसिद्ध है—

> कित मुरली, कित चंद्रिका, कित गोपिन को साथ।
> अपने जन के कारनै, कृष्न भए रघुनाथ॥

गोस्वामी तुलसीदासजीने मथुराके चौबोंके आग्रहपर मथुरामें भी एक जगह भगवान् सीतारामकी प्रतिष्ठा की थी, जो आज भी गवर्नमेंट कालेजके पास तुलसीदासजीके स्थानके नामसे प्रसिद्ध है।

निस्संदेह संस्कृत-साहित्यके पश्चात् हिंदीमें लिखित रामचरितमानस ही ऐसा ग्रन्थ है, जिसने व्रजके समाजमें समानरूपसे प्रवेश किया और उसका फल श्रीरामभक्तिके रूपमें प्रकट हुआ तथा यह कहनेमें संकोच नहीं है कि गोस्वामी तुलसीदासजी और उनके मानसके द्वारा व्रजमें श्रीरामभक्तिका प्रभाव दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है।

श्रीराम-नामकी महिमा

पूरन सक्ति दुवर्न को मन्त्र है, जाहि सिवादि जपैं सब कोऊ।
पावक पौन समेत लसै, मिलि जारत पाप-पहार कितोऊ॥
'दास' दिनेस-कलाधर भेष बने जग के निसतारक जोऊ।
मुक्ति-महीरुह के द्रुम हैं, किधौं राम के नाम के अच्छर दोऊ॥
पावतो पार न वार कोऊ, परिपूरन पाप कौ पानिप जोतो।
बूड़तो झूँठ-तरंगन में, मिलि मोहमई सरितान कौ सोतो॥
'दास' जू त्रास-तिमिंगल सों, तमग्राह के ग्रास सु बाँचतौ को तो।
जो भव-सिंधु अथाह निबाह कों राम कौ नाम मलाह न होतो॥
सिद्धन कौ सिरताज भयौ कवि-कोविद नाम ही की सिवकाई।
गीध गयंद अजामिल से तरिगे सब नाम ही की प्रभुताई॥
'दास' कहै पैहलाद उबारत, राम हु ते पैहलैं किहिं ठाईं।
राम-बड़ाई न नाम बड़ौ भयौ, राम बड़ौ निज नाम बड़ाई॥

—आचार्य भिखारीदास ('काव्य-निर्णय')

लोककल्याणकारी रामकी आज आवश्यकता है

(लेखक—डॉ० श्रीसुरेशव्रत राय डी० फिल०, एल्-एल्० बी०)

अपने धन-ऐश्वर्य और शक्तिके बावजूद असफल होनेपर मानव अदृश्य शक्तिकी ओर उन्मुख होकर कातर आर्तनाद कर उठता है, तब वह अदृश्य शक्ति किसी-न-किसी रूपमें रक्षा कर अपने आर्तत्राणके विरदकी पुष्टि करती है। इतना ही नहीं, असुरोंके अत्याचारोंसे त्रस्त मानवताके कल्याणार्थ ईश्वरीय शक्ति इस पृथ्वीपर अवतरित भी होती है। ढाई अक्षरोंका पुनीत नाम 'राम' इस अदृश्य शक्तिके लोक-कल्याणकारी रूपको प्रतिबिम्बित करता है।

राजपरिवारमें जन्म लेनेपर भी रामका जीवन त्याग, तपस्या और कष्टोंमें व्यतीत हुआ। सुकुमारावस्थामें ही ताड़का, सुबाहु, मारीच आदि असुरोंसे संघर्ष और उनके दमनके साथ आरम्भ होनेवाले जीवनका प्रारम्भिक भाग वनखण्डों, संघर्षोंमें ही समाप्त हुआ तथा कठोर शासन-भारके साथ अन्तमें सीताके वनवास और पाताल-प्रवेश और लक्ष्मणके परित्यागके साथ रामके त्याग और वेदनाकी चरम परिणति हुई और अन्तमें वे स्वयं भी सम्पूर्ण अयोध्यावासियोंके साथ सरयूमें प्रवेश कर गये—इस प्रकार रामका सम्पूर्ण जीवन अपने लिये न होकर जनकल्याणके लिये था। रामके लिये अयोध्या या जनकपुरीके समीपवर्ती वन-प्रदेशमें चौदह वर्षोंकी अवधि बिताना कोई कठिन न था; पञ्चवटी तथा राक्षसोंके अन्यान्य क्षेत्रोंमें जाकर युद्ध करने-जूझनेकी उन्हें कोई आवश्यकता न थी। न वे उन अन्धकार-पूर्ण बियाबान वनखण्डोंमें जाते, न संघर्ष होते और न सीताहरण होता। समीपवर्ती वनप्रदेशमें समय बितानेसे पिताकी आज्ञाका उल्लङ्घन भी न होता; क्योंकि आज्ञा किसी भी वनखण्डमें चौदह वर्ष वास करनेतक सीमित थी। परंतु रामका अभीष्ट कुछ और ही था।

दण्डकारण्यमें ऋषि-मुनियोंसे श्रीराम कह रहे हैं—'राक्षसोंद्वारा जो आपको कष्ट पहुँच रहा है, इसे दूर करनेके लिये ही मैं पिताके आदेशका पालन करता हुआ इस वनमें आया हूँ। आपकी सेवाका अवसर मिलनेसे मेरे लिये यह वनवास महान् फलदायक होगा।' उनके लोककल्याणकारी जीवनमें नीति और शासन-सम्बन्धी गुत्थियोंके अनेक प्रसङ्ग आते हैं, जिनसे अनेक वर्तमान समस्याएँ सुलझ सकती हैं। इन गुत्थियोंको उन्होंने मानवीय रूपमें ही सुलझाया। वाल्मीकि तो उन्हें श्रेष्ठ मानवके रूपमें ही देखते हैं। यही कारण है कि रामचरित 'दैवी' होकर भी 'मानवी' है। भगवान् राम अन्य अवतारोंकी अपेक्षा मानवी धरातलके अधिक समीप हैं। निर्बलके बल और निर्धनके धन राम हैं।

श्रीरामका युग राजनीतिक संघर्षोंकी दृष्टिसे आजकल-जैसा था। मांसाहार, मदिरापान और परस्त्रीगमनद्वारा 'खाओ, पीओ और मौज करो' वाली भौतिक विचारधाराको लेकर राक्षस जाति अपने साम्राज्यका विस्तार कर रही थी। निशाचरोंका राज्य विन्ध्याचलके आस-पासतक फैला था। खर-दूषण, विराध, कबन्ध, सुबाहु और मारीच-जैसे निशाचर तथा शूर्पणखा-अयोमुखी-जैसी राक्षसियाँ निष्कण्टक इधर-उधर घूमा करती थीं। इनके भयसे दूरतकके जनप्रदेश निर्जन हो गये। जहाँ-तहाँ नर-कङ्कालोंके ढेर दृष्टिगोचर होते थे। प्रतिदिनका जीवन अत्याचारोंसे दूभर हो गया था। सीमातिक्रमणकी घटनाएँ साधारण-सी बात हो गयी थीं। ताड़का, सुबाहु एवं मारीच-जैसे निशाचर अयोध्या तथा जनकपुरीके आस-पास पहुँच गये थे। इन्हें रोकनेकी शक्ति उस समयके शासकोंमें नहीं थी। दशरथ-जैसे पराक्रमी योद्धाओंतक यह कहने लगे थे—'नहि शक्तोऽस्मि संग्रामे स्थातुं तस्य दुरात्मनः।' (वा० रा० १। २०। २०)—मैं उस दुष्टसे युद्ध करनेमें असमर्थ हूँ।' निराशावादी धारणा बन गयी थी। भारतभूमि अत्याचारी असुरोंसे पदाक्रान्त हो रही थी। उनका साम्राज्य बेरोक-टोक बढ़ता चला आ रहा था। ऋषियोंका छद्मरूप धारणकर राक्षस आँखोंमें धूल झोंक रहे थे। उन्हें रोकनेमें प्रशासन प्रायः असफल हो गया था। ऐसे संकटपूर्ण समयमें रामने देशको भय, अशान्ति और अत्याचारोंसे मुक्त करनेका उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया।

राम स्वयं असाधारण पराक्रमके प्रतीक थे। बिना पराक्रमके लोककल्याण तो क्या, आत्मकल्याण भी सम्भव नहीं है। रामायण उनके पराक्रमकी यशो-गाथासे भरी पड़ी है। श्रीरामद्वारा पराक्रमकी कहीं आत्मप्रशंसा नहीं मिलती। रामके पराक्रमकी प्रशंसा स्वयं हनुमान्जीने इन शब्दोंमें की है कि 'महायशस्वी राम चराचर प्राणियोंसहित लोकोंका संहार करके फिर उनका नये सिरेसे निर्माण करनेकी शक्ति रखते हैं। भगवान् श्रीराम श्रीविष्णुके तुल्य पराक्रमी हैं। कोई भी ऐसा

व्यक्ति नहीं है, जो राघवेन्द्रसे लोहा ले सके।' (वा० रा० सु० ५१ । ३८–४१)

हनुमान्‌जी-जैसे गम्भीर और विचारशील व्यक्तिकी रायको हम भले भक्तिप्रधान कहकर अतिशयोक्तिपूर्ण मान लें, परंतु श्रीरामके शत्रुओंका अनुभव हनुमान्‌के मतकी पुष्टिके लिये पर्याप्त है। मारीचने रामके पराक्रमका वर्णन करते हुए रावणको समझानेका प्रयत्न किया है। किशोरावस्थामें ही रामने ताड़का तथा अन्य राक्षसोंको मार गिराया। वे मारीचका वध नहीं करना चाहते थे। अतः विना फलका बाण मारा, जिससे वह स्वयं कई सौ योजन दूर जा गिरा। शत्रु होनेपर भी उसने रामके पराक्रमकी प्रशस्ति की। दूसरे राक्षस अकम्पनने भी रामके पराक्रमका वर्णन किया है, जो रामसे परिचित था। उसने रावणके क्रोधकी चिन्ता न करके स्पष्ट शब्दोंमें कहा—'राम अजेय सुदृढ़ चट्टानकी भाँति हैं, जिससे टकराकर लङ्काकी सारी वाहिनी चूर-चूर हो जायगी। उनके बाण गरुड़के समान राक्षसरूपी सर्पोंका भक्षण कर सकते हैं।'

यहाँ स्मरण रखना चाहिये—रामका पराक्रम केवल संहारतक सीमित नहीं है। इसीलिये कहा गया है कि वे संहार करके नये सिरेसे सृष्टि कर सकते हैं। युगपुरुष प्राचीन भ्रामक मान्यताओं, अकल्याणकारी तत्त्वोंके संहारक और युग-स्रष्टा होते हैं। पराक्रम और आत्मविश्वास उनके अस्त्र हैं। रावणके गुप्तचरों—शुक और सारणने एक बार देखनेमात्रसे रामके अतुलित बल और पराक्रमका अनुमान कर लिया। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि 'श्रीरामचन्द्रजीका जैसा रूप है और जैसे उनके अस्त्र-शस्त्र हैं, उनसे तो यही प्रतीत होता है कि वे अकेले ही सारी लङ्कापुरीका वध कर डालेंगे।'

पराक्रम चाहे जिस प्रकारका हो—आर्थिक हो, सामाजिक हो अथवा शारीरिक—जब दूसरे लोग उसकी प्रशंसा करें, तभी उसे वास्तविक और फलदायक माना जा सकता है। आत्मप्रशंसा अथवा अपने अधीनस्थ व्यक्तियोंद्वारा भयके कारण की गयी प्रशंसा सदैव अवनतिकी ओर ले जानेवाली होती है। राम स्वयं पराक्रमी और पुरुषार्थी थे। पराक्रमी यशस्वी पूर्वजों—दिलीप, रघु एवं दशरथका गुणगान करनेकी अपेक्षा उन्होंने स्वयं पराक्रम और पुरुषार्थमें सामञ्जस्य उत्पन्न किया, जो उनकी सफलताका कारण है। पुरुषार्थके अभावमें पराक्रम निष्प्राण; स्पन्दनहीन शवकी भाँति बेकार सिद्ध होता है। ताड़का, सुबाहु, मारीच आदिके दमनके साथ किशोरावस्थामें ही श्रीरामने अपने पराक्रमका परिचय दिया। धनुर्भङ्गके साथ उसकी चर्चा देश-देशान्तरोंमें होने लगी। विराध, खर, दूषण, कबन्धके अतिरिक्त सहस्रों दुष्ट राक्षसोंके वधसे उनके शौर्यका चारों ओर बोलबाला हो गया। उनका पुरुषार्थ ही यश और पराक्रमका सबसे बड़ा प्रचार-साधन था। उनकी मान्यता थी, 'जो शासक प्रदेशकी प्रजाका पालन न कर सके और जिसमें देशकी रक्षा करनेकी सामर्थ्य और पुरुषार्थ न हो, उसे देशपर शासन करनेका कोई अधिकार नहीं है।' यदि सुग्रीवसे उनकी मैत्री हुई तो केवल बातचीत अथवा वाक्पटुताके सहारे नहीं; अपने पुरुषार्थके बलपर रामने सुग्रीवका सहयोग प्राप्त किया। सालके सात विशाल वृक्षोंको एक साथ भेदकर अपने पुरुषार्थका परिचय देनेके बाद ही राम सुग्रीवके साथ मैत्री स्थापित कर सके थे और फिर वालिवधके उपरान्त ही उन्हें सुग्रीवका पूर्ण सहयोग मिला था। पुरुषार्थी और पराक्रमी होनेपर भी राम कभी उद्धत रूपमें सामने नहीं आये। उनका स्वभाव गम्भीर, संयत, शान्त और विवेकपूर्ण था। सुग्रीवके भोग-विलासमें लीन हो जानेपर लक्ष्मण सीधे उनके वध करनेके लिये तैयार हो गये; परंतु रामने उन्हें धैर्यशील और शान्त रहनेका ही आदेश दिया। इसपर भी 'न स संकुचितः पन्था येन वाली हतो गतः'—(वा० रा० ४ । ३० । ८१) यह चेतावनी दिये बिना उनसे न रहा गया। सुग्रीवको पता चल गया कि इनकी कथनी और करनीमें अन्तर नहीं है और उसने प्रतिज्ञापालनमें ही अपनी कुशल समझी।

एक ओर क्षमाशील, तापसवेषधारी रूप और दूसरी ओर शस्त्रास्त्रसे युद्धावाहन—इस विरोधाभाससे सीताको भी संदेह हुआ था। श्रीसीताजीने कहा—'कहाँ शस्त्रधारण और कहाँ वनवास! कहाँ क्षत्रियका हिंसामय कठोर कर्म और कहाँ सब प्राणियोंपर दया करना (अहिंसा-धर्म)! अतः हमलोगोंको देशधर्मका ही आदर करना चाहिये, अर्थात् तपोवनमें निवास करनेके कारण पूर्णतः अहिंसावादी रहना चाहिये।' व्यावहारिक रामको अहिंसाकी यह कायर परिभाषा मान्य नहीं थी। तापस-जीवनमें भी कमण्डलुके साथ दण्डके समन्वयको उन्होंने साधनाका अङ्ग माना। चाहे जहाँ, जिस स्थितिमें तपस्वी रहे, उसे यज्ञकी रक्षाके लिये संनद्ध रहना चाहिये और क्षत्रिय तो अपने धर्ममें और भी बँधा है।' श्रीरामने बड़े सहज ढंगसे गुत्थीको सुलझाते हुए समझाया—

'देवि ! तुम्हें मैं क्या उत्तर दूँ ? तुमने ही पहले यह बात कही है कि क्षत्रियलोग इसलिये धनुष धारण करते हैं कि किसीको दुखी होकर हाहाकार न करना पड़े। दण्डकारण्यमें रहकर कठोर व्रतका पालन करनेवाले वे मुनि बहुत दुःखी हैं—इसलिये ऋषियोंकी रक्षा करना मेरे लिये आवश्यक कर्तव्य है।' अहिंसाका अर्थ कायरता नहीं है और न एकाङ्गी विकास ही कल्याणकारी हो सकता है।

सशक्त और समर्थ होनेपर भी रामने प्रत्येक अवसरपर अन्तिम क्षणतक शान्तिका प्रयत्न किया। विरोधपत्र भेजे, परंतु उनके शान्ति-प्रयत्न और विरोधपत्र हमारे दुर्बल और प्रभावहीन विरोध-पत्रोंसे भिन्न थे। प्रतिपक्षीको यह विश्वास होना चाहिये कि विरोधपत्र केवल मौखिक न होकर प्रभावशाली कार्यरूपमें परिणत हो सकता है। तीन दिनोंतक समुद्रसे मार्ग देनेके लिये अनुनय-विनय करनेपर भी कार्य सिद्ध न होते देखकर रामको अपनी भूलका अनुभव हुआ। अनुनय-विनय उसी सीमातक उचित है, जबतक क्षमाशीलता दुर्बलता, असमर्थताका द्योतक न प्रतीत हो। श्रीलक्ष्मणसे श्रीरामने कहा—'यह समुद्र मुझे क्षमासे युक्त समझकर असमर्थ समझने लगा है। ऐसे मूर्खोंके प्रति की गयी क्षमाको धिक्कार है।' —यों कहकर श्रीरामने भयंकर बाणको ब्रह्मास्त्रसे अभिमन्त्रित-कर अपने श्रेष्ठ धनुषपर चढ़ाकर डोरीको खींचा। श्रीरघुनाथजी-के द्वारा सहसा उस धनुषके खींचे जाते ही पृथ्वी और आकाश मानो फटने लगे और पर्वत डगमगा उठे। सारे संसारमें अन्धकार छा गया। किसीको दिशाओंका ज्ञान न रहा, सरिताओं और सरोवरोंमें तत्काल हलचल पैदा हो गयी। सहसा समुद्र भयानक वेगसे युक्त हो गया और प्रलयकालके बिना ही तीव्रगतिसे अपनी मर्यादा लाँघकर एक-एक योजन आगे बढ़ गया। इसपर भी राम अपने स्थानपर दृढ़ रहे और अन्तमें अनुनय-विनयसे न माननेवाले सागरको प्रकट होकर सेतुके लिये मार्ग देना पड़ा।

रामने रावणको अनेक बार कड़ा विरोध-पत्र भेजा; परंतु प्रत्येक विरोधपत्रके पीछे अतुलित पराक्रम और शक्ति थी, जिसका संदेशवाहकोंने समय-समयपर परिचय दिया। हनुमान् गये तो लङ्कादहनद्वारा अपनेको वानर-सेनाका सबसे छोटा एवं अशक्त वानर बताकर लङ्कावासियोंको चेतावनी दी। अङ्गदने शान्तिवार्ताके साथ रावणसभामें पैर रोपकर बड़े-बड़े योद्धाओं एवं वीरोंके छक्के छुड़ा कर दिये। उन्होंने किसी व्यक्ति अथवा देशविशेषकी मध्यस्थताकी प्रतीक्षा नहीं की और कहीं भी आत्मसम्मानको नहीं छोड़ा। रामने केवल बल और पराक्रमके बलपर शासन किया हो, ऐसी बात भी नहीं थी। उनका सबसे प्रभावशाली शासन हृदयपर था, जिसके कारण एक-एक वानर-रीछ उनके लिये प्राण देनेमें अपना अहोभाग्य समझता था। यदि राम पराक्रम और शौर्यके आदर्श हैं तो लोकप्रियताकी दृष्टिसे भी वे अद्वितीय आदर्श हैं। यदि हम वानरोंको असभ्य और पिछड़ी जंगली जाति भी मान लें, तो भी रामकी संगठन-प्रतिभाकी मुक्तकण्ठसे सराहना करनी पड़ती है। वानर-सेना बड़ी लगनसे सेतुबन्धन-कार्यमें जुट गयी। पर्वत-शिखरों, साल-बाँस आदि वृक्षों एवं शिलाखण्डोंसे समुद्रको पाटकर वानरसेनाने पाँच दिनोंमें सौ योजन तथा दस योजन चौड़ा सेतु तैयारकर असम्भवको सम्भव कर दिखाया। रावणको सहसा विश्वास ही नहीं हुआ; परंतु नलके बनाये हुए उस लंबे और चौड़े पुलको, जिसे बनाना बहुत ही कठिन काम था, देवताओं और गन्धर्वोंने देखा। रावणने शुक और सारणसे कहा—'यद्यपि समुद्रको पार करना अत्यन्त कठिन था, तो भी सारी वानर-सेना उसे लाँघकर इस पार चली आयी। रामके द्वारा सागरपर सेतुका बाँधा जाना अभूतपूर्व कार्य है। लोगोंके मुँहसे सुननेपर भी मुझे किसी तरह यह विश्वास नहीं होता कि समुद्रपर पुल बाँधा गया होगा। वानर-सेना कितनी है, इसका ज्ञान भी मुझे अवश्य प्राप्त करना चाहिये।' कुशल, त्यागमय, पराक्रमी, पुरुषार्थी और लोककल्याणकारी श्रीरामके नेतृत्वमें वानर-सेना असम्भव कार्य कर सकी, जिसकी किसीको भी आशा नहीं थी। जिस कार्यको सामर्थ्यसे परे मानकर तत्कालीन सारे देवता, योद्धा निराश हो गये थे, उसे मानववपुधारी भगवान् श्रीराम और वानर-सेनाने कर दिखाया। उनके आत्मविश्वास, दृढ़निश्चय, पराक्रम और पुरुषार्थके सामने सारी बाधाएँ शिथिल पड़ गयीं।

बीसवीं शताब्दीमें बापूद्वारा की गयी आदर्श स्वराज्यकी व्याख्या रामराज्यकी पर्यायवाची है। रामराज्य लोककल्याण—'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय' के आदर्श एवं शताब्दियोंतक अनुकरणीय शासन-व्यवस्थाका प्रतिनिधित्व करता है।

अयोध्यापुरीमें कोई भी ऐसा कुटुम्बी नहीं था, जिसके पास उत्कृष्ट वस्तुओंका संग्रह अधिक मात्रामें न हो, जिसे धर्म, अर्थ और कामरूप पुरुषार्थ सिद्ध न हो गये हों तथा जिसके पास गाय, बैल, घोड़े, धन-धान्य आदिका अभाव

हो। अयोध्यामें कहीं भी कृपण, क्रूर, मूर्ख और नास्तिक मनुष्य देखनेको भी नहीं मिलता था। वहाँके सभी स्त्री-पुरुष धर्मशील, संयमी, सदा प्रसन्न रहनेवाले तथा शील और सदाचारकी दृष्टिसे महर्षियोंकी भाँति निर्मल थे। वहाँ कोई भी कुण्डल, मुकुट और पुष्पहारसे शून्य नहीं था। किसीके पास भोग-सामग्रीकी कमी नहीं थी। कोई भी ऐसा नहीं था, जो नहा-धोकर साफ-सुथरा न हो, जिसके अङ्गोंमें चन्दनका लेप न हुआ हो तथा जो सुगन्धसे वञ्चित हो। रामराज्यमें दैहिक, दैविक और भौतिक ताप किसीको नहीं व्यापते थे। किसीकी छोटी अवस्थामें मृत्यु नहीं होती थी, न किसीको पीड़ा होती थी। सभी नीरोग, सुन्दर और स्वस्थ थे। न कोई दरिद्र था और न दीन ही। वृक्ष फल-फूलोंसे लदे रहते थे, गौएँ मनचाहा दूध देती थीं, धरती सदा खेतीसे भरी रहती थी। पर्वत मणियोंकी खानोंसे भरे पड़े थे, समुद्री लहरें असंख्य रत्न किनारे लाकर डाल देती थीं। पृथ्वी सोना-चाँदी उगलती थी। सारा राज्य प्रत्येक दृष्टिसे आदर्श, सुव्यवस्थित और समृद्ध—धन-धान्यसे पूर्ण था। रामराज्यका शासन एकतन्त्रात्मक होकर भी प्रजातान्त्रिक था। मन्त्रिपरिषद्के सदस्य लोककल्याणार्थ पूर्ण निष्ठावान् एवं निःस्वार्थ थे। उनका राम सदैव आदर करते थे। रामने लोक-कल्याणकी शाश्वत मर्यादा और मान्यता प्रतिष्ठित की। रामकथा व्यक्तिगत होकर भी समष्टिगत है, सीमित होनेपर भी व्यापक एवं शाश्वत है—यही उसकी सबसे बड़ी विशेषता है। रामने लोक-कल्याणकी शाश्वत मान्यताओंकी प्रतिष्ठा की।

आजके भारतको जैसी आवश्यकता रामकी है, सम्भवतः पहले कभी नहीं थी। भारतकी हजारों वर्गमील भूमिको पड़ोसी देश हथिया चुके हैं। शत्रु इन क्षेत्रोंको पदाक्रान्त कर रहा है और इसके आगे सीमा-विस्तारकी तैयारीमें लगा है। दैनिक जीवनमें जनसाधारणकी स्थिति एकतन्त्र एवं तानाशाही शासनकी अपेक्षा भी अधिक उपेक्षित एवं दयनीय है। कृषिप्रधान देशपर गरीबी और शोषणके कारण अकाल एवं कंगालीकी काली छाया मँडराती रहती है। हड़तालों, सीमाविवादों, पारस्परिक वैमनस्य, लोलुपतापूर्ण संघर्षों, गुटों, हिंसा, तोड़-फोड़, अराजकता, अध्यादेशों, लाठीचार्ज, गोलीवर्षा आदिसे जनजीवन संतप्त हो उठा है। सुरसाकी भाँति बढ़ती मँहगाई, हनुमान्‌जीकी पूँछकी भाँति नित्यप्रति बढ़ते टैक्सोंका असहनीय भार, भ्रष्टाचार, चोरबाजारी, मिलावट, मुनाफाखोरी आदि ही रावण, मेघनाद, कुम्भकर्ण, अहिरावण आदि राक्षस हैं, जिनके अत्याचारोंसे जनता कराह रही है। रामराज्य एक सुखद कल्पनामात्र रह गया है। पड़ोसी शत्रु देशको लल्चायी आँखोंसे अवसरकी ताकमें घूरते गिद्धोंकी भाँति घात लगाये बैठे हैं। इन असंख्य दानवोंके, समाजका रक्त चूसकर खोखला करनेवाले असुरोंके संहारके लिये आज पुनः रामकी आवश्यकता है। उसके प्रलयंकारी धनुषके टंकारकी अपेक्षा है। कुछ ऐसे भी विपरीत भावापन्न व्यक्ति हैं, जो रामके अस्तित्वको अस्वीकृत करके या रामके व्यक्तित्वको विकृत करके 'रावणत्व'-के प्रचार-प्रसारमें संलग्न हैं। पश्चिमी चकाचौंधसे जिनकी दृष्टि चकित हो चुकी है, अथवा विदेशियोंद्वारा गलत ढंगसे लिखे गये (Intentionally misinterpreted) भारतीय इतिहास और साहित्यको पढ़कर जिनकी बुद्धि भ्रमित हो चुकी है, अथवा विधर्मियों या विदेशियोंके पैसोंके लोभमें पड़कर जिनकी राष्ट्रनिष्ठा और धर्म-निष्ठाकी भावनाएँ क्रीत हो चुकी हैं, ऐसे ही चकितदृष्टि, भ्रमित-बुद्धि तथा क्रीतभावना-वाले व्यक्ति ही अभद्र आयोजनोंके द्वारा, असामाजिक भाषणोंके द्वारा, अवाञ्छनीय साहित्यके लेखनद्वारा भारतीय जीवनकी उज्ज्वलतापर कालिख पोतना चाहते हैं। विपरीत भावापन्न एवं विपरीत कार्यरत ऐसे व्यक्तियोंके 'उद्धार'-के लिये भी आज 'राम'-की नितान्त आवश्यकता है। परंतु कलियुगमें वह राम हमारे निष्क्रिय होकर बैठने और रामावतारके भरोसे प्रतीक्षा करनेसे आनेवाला नहीं है। आज देशको ४५ करोड़ राम एवं दुर्गाकी आवश्यकता है। भारत-भूमिके जन-जनको सच्चे अर्थोंमें राम बनना होगा। अपने रामका पराक्रम, पुरुषार्थ, लोककल्याणकी सच्ची भावना, दृढ़ता, आत्मविश्वास उत्पन्न करनेके साथ निष्ठाप्रधान दृढ़संकल्पके साथ पुरुषार्थ करना होगा, तभी देशका कल्याण और उसके साथ आत्मकल्याण सम्भव है। रामकथाको ठीक प्रकारसे समझने और जीवनमें उसके अनुशीलनसे ही समस्याओंका समाधान मिल सकता है। राम वह अजस्र प्रेरणा स्रोत है, जिससे नैराश्यपूर्ण एवं प्रतिकूल परिस्थितियोंमें भी साहस और प्रेरणा प्राप्त होती रहेगी। राम वह चिरन्तन प्रकाश-स्तम्भ है, जो गहनतम अन्धकारमें भी जन-जनका कल्याणकारी मार्गदर्शन करता रहेगा।

रामचरितकी व्यापकता

(लेखक—प्रो० श्रीकृष्णदत्तजी वाजपेयी)

भारतीय सांस्कृतिक निधि जिन जाज्वल्यमान रत्नोंसे परिपूर्ण है, उनमें मर्यादापुरुषोत्तम राम तथा कर्मयोगी कृष्णके उदात्त चरित विशिष्ट स्थान रखते हैं। युग-युगसे इन दोनों लोकनायकोंकी जीवनगाथाएँ विविध रूपोंमें भारत और उसके बाहर अनेक देशोंमें व्याप्त रही हैं।

रामकथाकी लोक-व्यापकता अनेक रूपोंमें मिलती है। कवि और नाट्यकार, शिल्पी तथा संगीतकार—सभीने अपनी-अपनी रुचि और श्रद्धाके अनुसार रामकथाका वर्णन किया और उसके द्वारा अपनी कृतियोंको अमर बनानेकी चेष्टा की। भारतके अनेक क्षेत्रोंसे रामायण-विषयक प्राचीन कलाकृतियाँ उपलब्ध हुई हैं। झाँसी जिलेके देवगढ़ नामक स्थानके प्रसिद्ध दशावतार-मन्दिरमें रामकथाके कई शिलापट्ट मिले हैं। मध्यप्रदेशके नचना (जिला पन्ना) में हालमें महत्त्वपूर्ण गुप्तकालीन मूर्तियाँ मिली हैं, जिनमें रामकथाके रोचक दृश्य प्रदर्शित हैं। इन दृश्योंमें शूर्पणखाद्वारा प्रलोभन, सीता-हरण, अशोक-वाटिकामें सीता, वानरोंद्वारा सेतु-निर्माण आदि उल्लेखनीय हैं। कलाकी दृष्टिसे ये शिलापट्ट उच्च कोटिके हैं। विन्ध्यक्षेत्रमें गुप्तकालीन मूर्तिकलाका जो अत्यन्त निखरा हुआ रूप मिलता है, उसके ये ज्वलन्त उदाहरण हैं। दक्षिण भारतके अनेक मन्दिरोंमें भी रामकथाको मूर्तरूप प्रदान किया गया है।

रामायण-विषयक अत्यन्त सुन्दर चित्र राजस्थानी तथा पहाड़ी कलाओंमें उपलब्ध हैं। इन चित्रोंमें रामकथाके रोचक रूपोंको लिया गया है। काँगड़ा तथा गुलेर-शैलियोंके चित्र उत्कृष्ट कोटिके हैं। इन चित्रोंमें विविध कथा-दृश्योंको उनके प्राकृतिक परिवेशमें आलेखित करनेमें चित्रकारोंने सराहनीय सफलता प्राप्त की।

रामकथाका उदात्त एवं लोकरञ्जक रूप भारतकी सीमाओं-में ही आबद्ध नहीं रहा; वह समुद्रोंको लाँघकर सुदूर पूर्वके देशोंतक व्याप्त हो गया। इन देशोंमें भारतीय संस्कृतिका प्रसार अबसे लगभग दो हजार साल पहले हो गया था। हिंदचीन तथा हिंदेशियाके अनेक भागोंमें भारतीय बस्तियाँ बस चुकी थीं। यूनानी लेखक टॉल्मीके वर्णनोंसे पता चलता है कि "ई० दूसरी शतीतक ताम्रलिप्ति (तमलुक, जिला मिदनापुर, बंगाल) के पूर्वसे लेकर चीनकी खाड़ीतक भारतीय लोग बस गये थे। अधिकांश बस्तियोंके नाम भारतीय प्रान्तों तथा नगरोंके अनुरूप ही रखे गये थे। आधुनिक कम्बोडियाका प्राचीन नाम 'कम्बुज', हिंदचीनके पूर्वी प्रदेशका नाम 'मालव' एवं 'दशार्ण' तथा अनामका नाम 'चम्पा' रखा गया। इसी प्रकार सुमात्राका एक भाग 'श्रीविजय' कहलाया। नगरोंके नाम भी अयोध्या, मथुरा, श्रीक्षेत्र, रामावती, रामपुर, द्वारवती, विक्रमपुर आदि हुए। गुप्तकालतक हिंदचीन तथा हिंदेशियाके अधिकांश क्षेत्रोंमें भारतीय रीति-रिवाज, रहन-सहन, भाषा-साहित्य तथा कलाका व्यापक प्रसार हो गया।"

दक्षिण-पूर्व एशियाके उक्त देशोंमें अनुकूल सामाजिक वातावरण उत्पन्न हो जानेपर वहाँ भारतीय संस्कृतिको विकसित होनेका अच्छा अवसर मिला। स्थानीय शासकवर्गने इस दिशामें बड़ा योग दिया। कम्बुज, चम्पा, सुमात्रा और जावाके शासकोंने भारतीय संस्कृतिको विविध रूपोंमें प्रोत्साहन दिया। इन प्रदेशोंमें हिंदू और बौद्ध स्मारक तथा कलाके जो बहुसंख्यक अवशेष मिले हैं, उनसे इस बातकी पुष्टि होती है। मलाया और हिंदेशियासे विष्णु, शिव, ब्रह्मा, गणेश, कार्तिकेय, दुर्गा आदि देवी-देवताओंकी पुरानी मूर्तियाँ बड़ी संख्यामें प्राप्त हुई हैं। कम्बुजमें वनतेचमर, अंकोरवट, वकुल आदि स्थान भारतीय धर्म और कलाके महत्त्वपूर्ण केन्द्र थे। कम्बुजमें भारतीय ढंगके आश्रम भी थे, जिनमें भारतीय गुरुकुल-प्रणालीसे अध्ययन-अध्यापन होता था।

ई० दसवीं शतीके बाद कम्बुजके भारतीय राज्यकी शक्ति बहुत बढ़ी। राजा जयवर्मा पञ्चमके समयसे कम्बुजमें हिंदूधर्मका विशेष उत्थान हुआ। ११९३ ई०में सूर्यवर्मा द्वितीय कम्बुजका शासक हुआ, जिसने वैष्णवधर्मके उत्थानमें बड़ा योग दिया। उसीने कम्बुजकी राजधानी यशोधरपुरमें अंकोरवटका प्रसिद्ध मन्दिर बनवाया। यह मन्दिर वास्तु तथा मूर्तिकलाके सर्वश्रेष्ठ उदाहरणोंमेंसे है। ऊँचाईमें यह जावाके बोरोबुदुर मन्दिरसे भी बड़ा है। अंकोरवटके इस विशाल मन्दिरमें रामायणकी कथा अमर कर दी गयी है। शिलापट्टोंपर श्रीरामजन्म, सीता-स्वयंवर, वनवास, सीता-अपहरण, राम-रावण-युद्ध, राज्याभिषेक आदि घटनाओंको अत्यन्त सजीवता-से चित्रित किया गया है। इन कृतियोंको देखकर कलाकारों-

की प्रतिमाके आगे नत-मस्तक हो जाना पड़ता है। इनमें रामायणकी पूरी कथा मुखरित हो उठी है।

यवद्वीप (जावा) में नवीं शतीमें परंबनं नामक स्थानपर तीन विशाल मन्दिरोंका निर्माण हुआ। ये क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और शिवके मन्दिर हैं। शिववाले मन्दिरमें अंकोरवट-के मन्दिरकी भाँति रामकथाको मूर्तरूप प्रदान किया गया है। मन्दिरमें रामायणके विविध दृश्य यथाक्रम सजीवताके साथ प्रदर्शित हैं।

कम्बोडिया और जावाके इन विशाल मन्दिरोंमें रामायणकी लोकरञ्जक कथाको व्यापकरूपसे अङ्कित किया गया और उसे शिल्पके माध्यमसे अमरता प्रदान की गयी। कलाके ये उदाहरण विदेशोंके साथ भारतके दीर्घकालीन सांस्कृतिक सम्बन्धके ज्वलन्त प्रमाण हैं और श्रीरामकी अमर कहानीकी याद आजतक सँजोये हुए हैं। इतने विस्तृतरूपमें रामकथाका प्राचीन शिल्पमें अङ्कन भारतमें कहीं देखनेको नहीं मिलता। ये प्राचीन शिल्प-कृतियाँ विदेशोंमें भारतीय सांस्कृतिक विजयका रोचक प्रतिनिधित्व करती हैं।

केवल शिल्पमें ही नहीं, उक्त देशोंके साहित्य तथा संगीतमें भी रामकथाको गौरवपूर्ण स्थान मिला है। दक्षिण-पूर्व एशियाके प्राचीन साहित्यमें रामकथा-सम्बन्धी कितनी ही गाथाएँ मिलती हैं, जिनसे वहाँके निवासी आनन्द एवं प्रेरणा प्राप्त करते रहे हैं। स्याम, अनाम तथा हिंदेशियाके लोक-साहित्यमें रामकथाके विविध रूप आज भी प्रचुरमात्रामें उपलब्ध हैं। हिंदेशियाके कितने ही भागोंमें अबतक भारतीय संगीत और नृत्यकी परम्परा जीवित है। उसमें रामलीलाका भी स्थान है। विविध परिधानों एवं अलंकारोंसे सजकर आज भी बाली, जावा आदिके स्त्री-पुरुष रामलीला करते हैं। इन द्वीपोंमें ये नाट्यलीलाएँ बड़ी पुरानी हैं। पूर्वमध्यकालमें धनपालद्वारा रचित 'तिलकमञ्जरी' नामक गद्य-आख्यायिकामें आया है कि इन द्वीपोंमें समय-समयपर धार्मिक लीलाएँ हुआ करती थीं, जिन्हें देखनेके लिये अठारह द्वीपोंके लोग एकत्रित हुआ करते थे।'

इन सांध्य नृत्य-लीलाओंकी दूर-दूरतक प्रसिद्धि हो गयी थी—यहाँतक कि सुदूर अयोध्याकी रानी मदिरावतीको भी एक बार यह दोहद-अभिलाषा हुई कि सागरके पार स्थित देव-मन्दिरोंमें इस प्रेक्षा-नृत्यको देखा जाय। इसका रोचक उल्लेख उक्त 'तिलकमञ्जरी' (पृ० ७५) में इस प्रकार मिलता है—

'विबुधवृन्दपरिवृता शाश्वतेषु सागरान्तद्वीपसिद्धायतनेषु सांध्यमारब्धमप्सरोभिः प्रेक्षानृत्यमीक्षितुमकाङ्क्षत् ।'

इन तथा अन्य साहित्यिक एवं अभिलेखीय विवरणोंसे ज्ञात होता है कि दक्षिण-पूर्व एशियाके देशोंमें संगीत तथा नाट्यके विविध लोकरञ्जक कार्यक्रम होते रहते थे। ये कार्यक्रम मुख्यतः रामायण, महाभारत, पुराण तथा जातक-ग्रन्थोंकी मनोरञ्जक एवं प्रेरणाप्रद कथाओंपर आधारित रहते थे। इनमें द्वीपस्थ-जनोंके अतिरिक्त आस-पासके देशोंके लोग भी बड़ी संख्यामें सम्मिलित होते थे।

श्रीरामसे याचना

कामरूपाय रामाय नमो मायामयाय च ॥
नमो वेदादिरूपाय ओंकाराय नमो नमः । रामाधराय रामाय श्रीरामायात्ममूर्तये ॥
जानकीदेहभूषाय रक्षोघ्नाय शुभाङ्गिने । भद्राय रघुवीराय दशास्यान्तकरूपिणे ॥
रामभद्र महेष्वास रघुवीर नृपोत्तम । भो दशास्यान्तकास्माकं रक्षां देहि श्रियं च ते ॥

(श्रीरामपूर्वतापनीयोपनिषद् ४ । १२—१५)

कामरूपधारी तथा मायामय स्वरूप ग्रहण करनेवाले श्रीरामको नमस्कार है। वेदके आदिकारण ओंकारस्वरूप श्रीरामको नमस्कार है। रामा—श्रीसीताजीको धारण करनेवाले अथवा रमणीय अधरोंवाले, आत्मरूप, नयनाभिराम श्रीरामको नमस्कार है। श्रीजानकीजीका शरीर ही जिनका आभूषण है, अथवा जो श्रीजनकनन्दिनीके श्रीविग्रहको स्वयं ही श्रृङ्गार आदिसे विभूषित करते हैं, जो राक्षसोंके संहारक तथा कल्याणमय विग्रहवाले हैं तथा जो दशमुख रावणका अन्त करनेके लिये यमराजस्वरूप हैं, उन मङ्गलमय श्रीरघुवीरको नमस्कार है। हे रामभद्र! हे महाधनुर्धर! हे रघुवीर! हे नृपश्रेष्ठ! हे दशवदन-विनाशक! हमारी रक्षा कीजिये तथा हमें देवी श्री—ऐश्वर्य-सम्पदा दीजिये, जिसका सम्बन्ध आपसे हो, अर्थात् जो भगवत्सेवामें ही उपयोगमें लायी जा सके।

श्रीरामकी समदर्शिता तथा भक्त-वत्सलताका रहस्य

(लेखक—वेदान्ती स्वामी श्रीरँगीलीशरण देवाचार्य, साहित्य-वेदान्ताचार्य, काव्यतीर्थ, मीमांसा-शास्त्री)

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥
(गीता ९। २९)

परात्पर ब्रह्म सर्वेश्वर भगवान् यदि अपने भजन करनेवाले भक्तोंको ही भोग-मोक्ष प्रदान करते हैं तो फिर वे समदर्शी कैसे ?—इस शङ्काका समाधान करते हुए श्रीभगवान् कहते हैं—'मैं सभी—देव-पशु-पक्षी-मनुष्य अर्थात् उत्तम-मध्यम-अधम प्राणियोंमें समानभावसे व्याप्त हूँ। मैं सबके लिये समदर्शी हूँ, मेरा किसीसे राग-द्वेष नहीं है। किसी भी उपासकके जाति-गुण और ऊँच-नीच भावको बिना देखे ही मैं उसे अपना लेता हूँ।'

जिस प्रकार आम-अनार-अंगूर-अमरूद आदिके बीजोंको अङ्कुरित करनेके लिये जल बीजगत शक्तिको उद्‌बुद्ध करता है; फिर जैसी जिस बीजमें शक्ति होती है, उसीके अनुकूल फूल-फल, गुण-दोष उस पौधेमें पैदा हो जाते हैं, जल उनमें कोई विषमता नहीं पैदा करता; जैसे अग्निके पास जानेवाले किसी भी प्रकारके प्राणीका शीत एवं अन्धकारजन्य कष्ट दूर हो जाता है, अग्निका किसीसे न द्वेष है और न प्रीति है, वह तो सबके लिये समान है; जैसे कल्पवृक्ष अपने आश्रितजनके मनोरथको बिना भेद-भावके पूर्ण करता है, उसमें कोई विषमता नहीं है, वह सबके लिये समान है; इसी तरह भगवान् राम भी सबके लिये समदर्शी हैं।

या ते धामानि परमाणि यावमा
या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा।
शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः
स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः॥

(ऋ० १०। ८१। ५) [गीता ९। २९ पर केशवकाश्मीरी भ० की व्याख्या एवं परमार्थप्रपाका सारांश]

श्रीमद्भागवतमें युधिष्ठिरने कहा है—

न ब्रह्मणः स्वपरभेदमतिस्तव स्यात्
सर्वात्मनः समदृशः स्वसुखानुभूतेः।
संसेवतां सुरतरोरिव ते प्रसादः
सेवानुरूपमुदयो न विपर्ययोऽत्र॥
(१०। ७२। ६)

अर्थात् आप सबके आत्मा, समदर्शी और स्वयं आत्मानन्दके साक्षात्कार हैं, स्वयं ब्रह्म हैं। आपमें यह मैं हूँ और यह दूसरा, यह अपना है और यह पराया—इस प्रकारका भेद-भाव नहीं है। फिर भी जो आपकी सेवा करते हैं, उन्हें उनकी भावनाके अनुसार फल मिलते ही हैं—ठीक वैसे ही जैसे कल्पवृक्षकी सेवा करनेवालेको उसकी सेवाके अनुरूप फल मिलता ही है। इससे आपमें विषमता आदि दोष नहीं आते—

'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्।
वैषम्यनैर्घृण्येन सापेक्षत्वात् तथा हि दर्शयति।'
(२। १। ३२-३३)

तथा 'कृतप्रयत्नापेक्षस्तु···' (२। ३। ४२)

—आदि सूत्रोंमें भी उपर्युक्त भाव निर्दिष्ट है। जैसे अनेक प्रकारके बीजोंमें बीज-शक्तिके अनुसार ही फल होते हैं, जल उसमें विषमता पैदा नहीं करता, उसी प्रकार पूर्वकर्मस्वभावानुसार ही विभु जीवको भी फल प्रदान करते हैं।

गीतामें भी कहा है—

तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु॥
(१६। १९)

'जो दुष्ट कर्म करनेवाले होते हैं, उन नराधमोंको मैं निरन्तर सूकर-कूकर आदि नीच योनियोंमें डालता रहता हूँ। वे मुझे न प्राप्त होकर संसारकी नीच योनियोंमें घूमते रहते हैं; क्योंकि पुण्यकर्मसे ही पुण्यकर्म होता है और पापकर्मसे मनुष्यको बराबर पापकर्मकी प्रेरणा मिलती है।' (वेदान्तसूत्रपर श्रीनिवासाचार्यके वेदान्तकौस्तुभ भाष्यका सारांश)

कर्ताकी साधुता-असाधुताकी फलव्यवस्था भक्ति-अभक्तिके अनुसार ही होती है। देवगुरु बृहस्पतिके शब्दोंमें तुलसीदासजीने भी कहा है—

जद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गहहिं न पाप पूनु गुन दोषू॥
करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा॥
तदपि करहिं सम बिषम बिहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा॥
(मानस २। २१८। २–२½)

इसीलिये व्याध, कुब्जा, गजेन्द्र, शबरी, गुह-निषाद, वानर-भालु—सभीको प्रभुने अपना लिया। व्याधका कोई पुनीत—पवित्र चरित्र नहीं था। ध्रुव पाँच वर्षके भोले-भाले बालक थे। गजेन्द्र पशु था, कोई विद्या आदि उसके पास नहीं थी। कुब्जा कोई रूपवती युवती नहीं थी। सुदामा

एक निर्धन ब्राह्मण थे। विदुर दासी-पुत्र थे। यादवपति उग्रसेनका कोई पुरुषार्थ नहीं था। किंतु इन सभी महानुभावोंमें प्रभुके प्रति निष्कपट पुनीत प्रेम था, अतः प्रभु प्रसन्न हो गये; जटायुकी भक्तिसे प्रभावित होकर उन्होंने अपनी पवित्र जटाओंसे उसकी धूलतक झाड़ी—'जटायुकी धूर जटान सों झारी'। किसी भक्तने कहा है—

व्याधस्याचरणं ध्रुवस्य च वयो विद्या गजेन्द्रस्य का
कुब्जायाः किमु नामरूपमधिकं किं तत् सुदाम्नो धनम्।
का जातिर्विदुरस्य यादवपतेरुग्रस्य किं पौरुषं
भक्त्या तुष्यति केवलं न च गुणैर्भक्तिप्रियो माधवः॥

श्रीहनुमान्‌जीने अपने प्रभुके इस स्वभावका परिचय देते हुए विभीषणसे यही कहा था, जिससे कि विभीषणके हृदयमें लोकरावण रावणके बन्धु होनेका पश्चात्ताप न हो—

सुनहु बिभीषन प्रभु कै रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीती॥
कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबहीं बिधि हीना॥
(मानस ५।६।३-३½)

क्योंकि भगवान् तो भक्तिमान्‌से ही प्यार करते हैं। सेवकके समान उन्हें दूसरा कोई प्रिय नहीं है। चतुर्वेदका प्रवक्ता चतुरानन ब्रह्मा भी यदि भक्तिहीन है तो भगवान् उसकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखते। कलिन्दनन्दिनीके कूलपर दुकूलधारी वृन्दावनविहारीने ब्रह्माकी ओर नहीं देखा। जब भक्तोंने देखनेका आग्रह किया, तब ब्रह्माकी कोई बात सुनी। गोस्वामीजीने इसका बहुत सुन्दर चित्रण किया है—

भगति हीन बिरंचि किन होई। सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई॥
भगतिवंत अति नीचउ प्रानी। मोहि प्रानप्रिय असि मम बानी॥
(वही, ७।८५।५)

हनुमान्‌जीसे स्वयं भगवान् राम भी कहते हैं—

समदरसी मोहि कह सब कोऊ। सेवक प्रिय अनन्यगति सोऊ॥

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥
(वही, ४।२।४-३)

मुझे लोग समदर्शी कहते हैं, पर मुझे अनन्यगति सेवक परम प्रिय है; और हे हनुमान्! अनन्य भक्त वही है, जिसकी यह बुद्धि कभी नहीं टलती कि जड-चेतन—सारा जगत्—मेरे स्वामी भगवान्‌का रूप है और मैं सेवक हूँ। भागवतमें भी कहा है—

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च
ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं
यत्किं च भूतं प्रणमेदनन्यः॥
(११।२।४१)

अर्थात् आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्यादि ग्रह-नक्षत्र, जीव, दिशाएँ, वृक्ष आदि उद्भिज जातिके जीव, नदियाँ और समुद्र तथा जो कोई भी प्राणी हैं, वे सब श्रीहरिका ही शरीर हैं—यह मानकर भगवान्‌का अनन्य भक्त उन्हें प्रणाम करे।

यही बात महारामायणमें भी कही गयी है—

भूमौ जले नभसि देवनरासुरेषु
भूतेषु देव सकलेषु चराचरेषु।
पश्यन्ति शुद्धमनसा खलु रामरूपं
रामस्य ते भुवितले समुपासकाः स्युः॥

'देव! जो भूमि, जल, आकाश, देवता, मनुष्य, राक्षस तथा सम्पूर्ण चराचर प्राणियोंमें शुद्ध मनसे राम-रूपका दर्शन करते हैं, वे ही इस संसारमें रामके अनन्य उपासक हो सकते हैं।'

भगवान्‌की समदर्शिताको स्पष्ट करते हुए तुलसीदासजी एक उदाहरण देते हैं—

सुचि सुसील सेवक सुमति प्रिय कहु काहि न लाग।
श्रुति पुरान कह नीति असि सावधान सुनु काग॥

एक पिता के बिपुल कुमारा। होहिं पृथक गुन सील अचारा॥
कोउ पंडित कोउ तापस ग्याता। कोउ धनवंत सूर कोउ दाता॥
कोउ सर्बग्य धर्मरत कोई। सब पर पितहि प्रीति सम होई॥
कोउ पितु भगत बचन मन कर्मा। सपनेहुँ जान न दूसर धर्मा॥
सो सुत प्रिय पितु प्रान समाना। जद्यपि सो सब भाँति अयाना॥
एहि बिधि जीव चराचर जेते। त्रिजग देव नर असुर समेते॥
अखिल बिस्व यह मोर उपाया। सब पर मोहि बराबरि दाया॥
तिन्ह महँ जो परिहरि मद माया। भजै मोहि मन बच अरु काया॥

पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ।
सर्ब भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ॥
सत्य कहउँ खग तोहि सुचि सेवक मम प्रानप्रिय।
अस बिचारि भजु मोहि परिहरि आस भरोस सब॥
(रामचरित० उत्तरका० ८६।८७।१-४; क, ख)

'शुचि, सुशील और सुमति सेवक, बताइये, किसे प्रिय न होगा। ऐसा सेवक तो औरोंकी अपेक्षा सदा ही विशेष प्रिय होता है। एक पिताके अनेक लड़के होते हैं। उनमें कोई पण्डित, कोई तपस्वी, कोई ज्ञानी, कोई धनी, कोई वीर, कोई दानी, कोई सर्वज्ञ और कोई धर्मपरायण होता है। पिताके लिये सभी समान हैं; किंतु यदि कोई पुत्र पिताकी मन, वाणी और कर्मसे केवल भक्ति करता हो, स्वप्नमें भी किसी अन्य कार्यके प्रति उसकी आसक्ति न हो, भले ही उसमें और किसी प्रकारकी चतुरता नहीं है, तो भी पिताके प्रति उसकी अनन्यता उसे पिताका सबसे अधिक प्रिय बना देती है। भगवान् भी इसी प्रकार सबपर प्रेम करते हैं—चाहे वह पुरुष हो, नपुंसक हो, अथवा नारी हो। किंतु जो भी कोई—सर्वभावसे उन्हें ही सब कुछ समझकर—उनका भजन करता है, वह उन्हें परम प्रिय होता है। इसीलिये कहा गया है कि भगवान्का परमप्रिय बननेके लिये सबकी आशा-भरोसा छोड़कर एकमात्र उन्हींका भजन करना चाहिये।'

प्रसिद्ध संत भक्त भगवतरसिकजी भी ऐसा ही उपदेश देते हैं—

रुचि लै सुचि सेवा करे सेवक कहिये सोय।
तन मन धन अर्पन करै, रहै अपनपौ खोय॥

गीतामें तो इसका स्पष्ट आश्वासन है—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(८।१४)

'अर्जुन! जो पुरुष अनन्यचित्तसे निरन्तर मेरा स्मरण करता है, उस नित्य योगयुक्त भक्तके लिये मैं सदैव सुलभ हूँ।'

वे सुलभ ही नहीं हैं, बल्कि वे भक्तकी प्रतिज्ञाको अपनी प्रतिज्ञा समझ लेते हैं और यदि उसे पूरा करना आवश्यक होता है तो उसके लिये अपनी प्रतिज्ञा छोड़ देते हैं। सभी जानते हैं, महाभारत-युद्धमें भगवान् निरस्त्र होकर अर्जुनके सारथि बने थे। पर एक दिन पितामह भीष्म प्रतिज्ञा कर बैठे कि 'आज ऐसा भयानक युद्ध करूँगा, जिसके कारण भगवान्को अपनी प्रतिज्ञा तोड़कर शस्त्र धारण करना ही पड़ेगा।' भगवान् ठहरे भक्तवत्सल; उनके लिये अपना कहनेको कुछ नहीं है, सब कुछ भक्तका ही है। भक्तका मान उनका मान है, भक्तका अपमान उनका अपमान है।

भगवान् सदैव सेवककी रुचिका ध्यान रखते हैं—इस विषयमें वेद, पुराण, साधु, देवता सभी इसके साक्षी हैं।

'राम सदा सेवक रुचि राखी। बेद पुरान साधु सुर साखी॥'

(मानस २।२१८।३½)

भक्तका अपराध करनेवालेको वे अपना ही अपराध करनेवाला मानते हैं। उनका कोई अपराध करे तो उसकी उन्हें चिन्ता नहीं; खयाल भी नहीं करते उसका वे; किंतु भक्तका अपराध करनेवाला व्यक्ति तो अपने लिये कालको ही आमन्त्रण दे देता है। (देवगुरु बृहस्पतिद्वारा कथित) गोस्वामी तुलसीदासजीके शब्दोंमें—

सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ। निज अपराध रिसाहिं न काऊ॥
जो अपराधु भगत कर करई। राम रोष पावक सो जरई॥
लोकहुँ बेद बिदित इतिहासा। यह महिमा जानहिं दुरबासा॥

(मानस २।२१७।२-३)

राम-रोष-पावकसे ही सोनेकी लङ्का खाक हो गयी। यह भक्त विभीषणका अपराध ही रावण और लङ्काके लिये अग्नि बन गया।

शङ्कालु इन्द्र भी भक्त भरतके भावको न भाँप सके। भरत ऐसे भक्त हैं, जिनकी जनक-जैसे ज्ञानिशिरोमणि भी मुक्तकंण्ठसे प्रशंसा करते हैं—

'भरतु अवधि सनेह ममता की। जद्यपि रामु सीम समता की॥'

(मानस २।२८८।३)

समता-सिन्धु श्रीरामकी समताकी सीमाको तोड़कर भरतकी मधुमयी ममताने यह कहला दिया कि—

'भरत सरिस को राम सनेही। जगु जप राम रामु जप जेही॥'

(मानस २।२१७।३½)

अम्बरीषके साथ दुर्वासाके व्यवहारसे प्रायः सभी लोग परिचित हैं। साथ ही दुर्वासाके पीछे पड़नेवाले सुदर्शनकी बात भी लोग जानते ही हैं। आखिर दुर्वासाको अपनी विपत्तिसे मुक्ति पानेके लिये अम्बरीषकी—भगवान्की नहीं, भगवान्के भक्तकी ही शरण लेनी पड़ी थी। श्रीमद्भागवतमें आया है—

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः॥

(९।४।६३)

प्रभु भक्त अम्बरीषके दैन्यादिभावपर दयाद्रवित होकर भक्तापराधी, तीव्र तपस्याभिमानी, चक्रसे भयभीत दुर्वासाकी

दुर्दशा देख बोले—'दुर्वासाजी ! क्या बताऊँ, मैं तो पूरी तरहसे भक्तोंके अधीन हूँ, तनिक भी स्वतन्त्र नहीं। मेरे सीधे-सादे भक्तोंने मेरे हृदयको अपने वशमें कर रखा है। वे मुझसे ही प्रेम करते हैं और मैं भी उनसे ही प्रेम करता हूँ।'

'मेरे अनन्य प्रेमी भक्त मेरी सेवा करके ही अपनेको कृतकृत्य समझते हैं और सेवाके फलस्वरूप मिलनेवाली मुक्ति-तकको स्वीकार नहीं करते, फिर नाशवान् अन्य वस्तुओंको लेनेकी तो बात ही नहीं उठती।

'अपने भक्तोंका मैं ही एकमात्र आश्रय हूँ। उनके लिये न मैं अपने आपकी परवा करता और न अपनी परम प्रिय भार्या—लक्ष्मीकी ही। जो भक्त स्त्री, पुत्र, गृह, गुरुजन, प्राण, धन, इहलोक, परलोक—सभीको छोड़कर एकमात्र मेरी ही शरणमें आ गये हैं, उनको छोड़नेकी बात भी मैं कैसे सोच सकता हूँ। जैसे सती स्त्री अपने पातिव्रतसे सदाचारी पतिको वशमें कर लेती है, वैसे ही समदर्शी साधु अपने प्रेमबन्धनमें बाँधकर अपनी भक्तिके द्वारा मुझे वशमें किये रहते हैं।

'मैं अधिक क्या कहूँ। मेरे प्रेमी भक्त मेरे हृदय हैं और उन प्रेमी भक्तोंका हृदय मैं स्वयं हूँ। वे मेरे अतिरिक्त कुछ नहीं जानते और मैं उनके अतिरिक्त कुछ नहीं जानता।'

(वही, ९। ४। ६४ से ७१ तक)

इसी विषयमें निषादका उदाहरण देते हुए और श्रीसीतापति प्रभुके भजनका प्रत्यक्ष प्रभाव दिखलाते हुए गोस्वामीजी निषाद और महर्षि वसिष्ठका मिलन कितनी प्रियताके साथ बतला रहे हैं—

एहि सम निपट नीच कोउ नाहीं। बड़ बसिष्ठ सम को जग माहीं॥
जेहि लखि लखनहु तें अधिक मिले मुदित मुनिराउ।
सो सीतापति भजन को प्रगट प्रताप प्रभाउ॥

(मानस २। २४२। ४; २४३)

गुहराज-जैसे अधम जातिके व्यक्तिको भी वे अपना समझते हैं और वैसा ही व्यवहार उसके साथ करते हैं। गोस्वामीजी कहते हैं—

'सब भाँति अधम निषाद सो हरि भरत ज्यों उर लाइयो।'

(मानस ६। १२०। २)

क्योंकि गुहके हृदयमें भगवान्‌के लिये अटूट प्रीति थी—

'प्रीति परम बिलोकि रघुराई। हरषि उठाइ लियो उर लाई॥'

(मानस ६। १२०। ६)

प्रभुकी कृपा पानेके लिये दीनताका रहना अपेक्षित है—

'कृपास्य दैन्यादियुजि प्रजायते।' (वेदान्त-कामधेनु, निम्बार्काचार्य)

दैन्यादि-लक्षणलक्षित भावुक भक्तके ऊपर प्रभुकी कृपा अवतरित होती है। भक्तोंमें धन-जन, रूप-गुण, ऊँचता-चतुराई आदिको लेकर भेद नहीं होता—

'नास्ति तेषु जातिविद्यारूपकुलधनक्रियादिभेदः।'

(नारद-भक्तिसूत्र, ७२)

कोई व्यक्ति अनाचारी, दुराचारी, पापाचारी, भ्रष्टाचारी ही क्यों न हो, यदि वह प्रभुकी अनन्यभावसे निष्ठापूर्वक भक्ति करता है तो भगवान् उसके सब भेदोंको भूलकर उसे स्वीकार कर लेते हैं। दैवयोगसे उसके क्रिया-कलापमें यदि दोष भी आ जाय तो भी प्रभु स्वप्नमें भी उस दोषको ध्यानमें नहीं लाते और 'करउँ सद्य तेहि साधु समाना' (मानस ५। ४७। २) के अनुसार तुरंत ही उसे रूपान्तरित करके साधु बना देते हैं। गीतामें भी इसी तत्त्वको प्रकट किया गया है—

'साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥'

(९। ३०)

जब सम्पूर्ण सुखोंके राशि प्रभु श्रीराम सकल ज्ञानाभिमानी ऋषि-मुनिवृन्दको छोड़कर गुरु और प्रभुपर विश्वास रखनेवाली, अपनेको सब प्रकारसे साधनहीन, नीच, अधम माननेवाली शबरीके पास पहुँचे, तब वह उदार-शिरोमणि शोच-विमोचन, कमल-दल-लोचन श्रीरामका प्रत्यक्ष दर्शन करके निहाल हो गयी और फल-फूल आदिसे उनका हार्दिक स्वागत करके हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगी—

केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी। अधम जाति मैं जड़मति भारी॥
अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्ह महँ मैं मतिमंद अघारी॥

(मानस ३। ३४। १—१½)

'भगवन् ! मैं आपकी किस प्रकारसे स्तुति करूँ; क्योंकि मैं तो अधम-से-अधम, मतिमन्द तथा पापकी राशि नारी हूँ।'

शबरीकी इस प्रार्थनाको सुनकर भक्तवत्सल प्रभु रस-मूल, फल-फूलको खाकर सबके प्रति समता और भक्तके प्रति ममता दिखलाते हुए बोले—

कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउँ एक भगति कर नाता॥
जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई॥

भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा॥
(मानस ३। ३४। २-३)

भक्तके दिये हुए फल-फूल-साग आदि भी भगवान् प्रसन्न होकर स्वीकार करते हैं और अभिमानी दुर्योधनादिकी विविध पकवान-सामग्रीको भी ठुकरा देते हैं। यह कथानक महाभारतके विदुरप्रसङ्गादिमें तथा भक्तमाल आदिमें बहुत प्रसिद्ध है—

स्वयं प्रभु कहते हैं कि पत्र, पुष्प, फल, जल भक्तिपूर्वक कोई भी मुझे दे तो मैं उसका भोग लगाता हूँ—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥
(गीता ९। २६)

जिनको वेद—'अनश्नन् अभि चाकशीति' (ऋ० सं० १। १६४। २०) कहता है अर्थात् जो न खाते हुए प्रकाशित होते हैं, वे ही प्रभु सारे भेदभावको भुलाकर शबरीके बेर और विदुरानीके केलेके छिलके माँग-माँगकर खाते हुए नहीं अघाते। इतना ही नहीं, भक्तवत्सल प्रभु भक्तोंके हाथ बिक जाते हैं। यथा—

तुलसीदलमात्रेण जलस्य चुलुकेन वा।
विक्रीणीते स्वमात्मानं भक्तेभ्यो भक्तवत्सलः॥

यदि निज दास गलिताभिमान होकर श्रीरामप्रभुके पास आकर एक बार भी यह कह दे कि 'भगवन्! मैं आपका हूँ' तो वे सर्वभूतोंसे उसे अभय कर देते हैं—एक बार शरणमें आते ही प्रभु उसे अपना लेते हैं; क्योंकि यह तो उनकी प्रतिज्ञा है—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥
(वा० रा० ६। १८। ३३)

तुलसीदासजीका भी यही कहना है—

कूर कुटिल खल कुमति कलंकी। नीच निसील निरीस निसंकी॥
तेउ सुनि सरन सामुहें आए। सकृत प्रनामु किए अपनाए॥

भक्तके सम्बन्धमें कहा गया है—

बिधि-निषेध आदिक जिते कर्म-धर्म तजि तास।
प्रभु के आश्रय आवही, सो कहिये निज दास॥
(महावाणीः श्रीहरिव्यासदेवजी)

"विधि-निषेध आदिके विषय कर्म-धर्मको छोड़कर जो प्रभुकी शरणमें आता है, उसीको 'निज दास' कहते हैं।"

प्रभु अपने भक्तोंके लिये विभीषणसे स्पष्ट शब्दोंमें कहते हैं—'तुम्हारे समान संत मुझे प्रिय हैं और संतोंके लिये ही मैं देह धारण करता हूँ। भक्त मुझे भूल जाय तो भी मैं भक्तको नहीं भूलता। जैसे कृपण धनको याद करता है, उसी तरह मैं भक्तको याद करता हूँ; क्योंकि भक्त सर्वभावोंका समन्वय मुझमें ही करता है, उसी प्रकार जैसे अबोध बालक माताके ऊपर निर्भर रहता है। माता हजारों कार्योंको छोड़कर बालककी थोड़ी-सी भी असुविधा देखती है तो उसे पूरा करनेका प्राणपणसे प्रयत्न करती है। जो बड़े बालक माताकी परवा नहीं करते, उनके लिये माता भी चिन्तित नहीं होती।

ऋग्वेदके भी एक मन्त्रने यह बात स्पष्ट कर दी है कि भगवान्‌की कृपा समानरूपसे सबके लिये बराबर उतरती है; किंतु प्राणियोंके कर्मके अनुसार फलमें विषमता हो जाती है—

अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेष्वसमा बभूवुः।
आदघ्नास उपकक्षास उ त्वे ह्रदा इव स्नात्वा उ त्वे ददृश्रे॥
(ऋ० १०। ७१। ७)

अर्थात् जिस प्रकार एक-से कानवाले, एक-सी आँखवाले अनेक शिष्य एक ही गुरुके पास पढ़ते हों और गुरुके द्वारा एक ही समयपर पढ़ाये हुए विषयको अपनी ग्रहणशक्तिके अनुसार कम या अधिक या बिल्कुल नहीं ग्रहण कर पाते, उसी प्रकार सुखके स्रोत परमात्माके एक ही होनेपर भी प्राणी अपनी श्रद्धा और विश्वासके अनुसार उसे उसी मात्रामें ग्रहण करता है। जिस प्रकार जो शिष्य गुरुके जितना समीप होता है तथा उनकी प्रवृत्ति और प्रकृतिसे ऐक्य स्थापित किये रहता है, वह उतना ही अधिक उनकी बातको समझता तथा ग्रहण करता है, उसी प्रकार भगवान्से जो व्यक्ति जितना अधिक ऐक्य स्थापित किये रहता है, उसे उतने ही अधिक सुखकी प्राप्ति और अनुभूति होती है।

गुरु सभी शिष्योंको एक-सी ही विद्याका दान देता है। किसीकी ज्ञानशक्तिको न तो वह बढ़ाता है और न किसीकी ज्ञानशक्तिका अपहरण करता है; किंतु फलमें—परिणाममें प्रभूत भेद देखनेमें आता है। जो मेधावी छात्र हैं, वे गुरुके संकेतपर विद्या ग्रहण कर लेते हैं—और जो मन्द बुद्धिवाले हैं, वे नहीं कर पाते। जैसे एक स्वच्छ मणि बिम्बको ग्रहण करनेमें समर्थ है और मिट्टीका ढेर प्रतिबिम्ब ग्रहण नहीं कर सकता। 'नैषधीयचरित'(३।९१)में तो यहाँतक कहा है—

गुरूपदेशं प्रतिभेवतीक्ष्णा प्रतीक्षते जातु न कालमर्तिः।

तीव्र बुद्धि बिना उपदेशके भी तत्त्व ग्रहण कर लेती है। विशिष्टानुभूति भवभूति इसी विषयको विशेष सुन्दरतासे समझाते हैं—

वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां यथैव तथा जडे
न तु खलु तयोर्ज्ञाने शक्तिं करोत्यपहन्ति वा।
भवति हि पुनर्भूयान् भेदः फलं प्रति तद्यथा
प्रभवति शुचिर्बिम्बग्राहे मणिर्न मृदादयः॥
(उत्तररामचरित २।४)

जैसे कल्पतरुके तले जाकर कामना करनेवालेको ही अभिलषित वस्तुकी उपलब्धि होती है, यद्यपि वह सबको समभावसे देता है, किसी व्यक्तिविशेषके साथ विषमता नहीं करता, इसी प्रकार भगवान्‌के लिये न कोई प्रिय है न अप्रिय, न कोई शत्रु है न कोई मित्र और न कोई उपेक्षाका ही पात्र है। वे अपने पास आनेवाले उपासकको उसकी योग्यताकी ओर ध्यान न देकर उसे आत्मसात् कर लेते हैं—

न तस्य कश्चिद्दयितः सुहृत्तमो
न च प्रियो द्वेष्य उपेक्ष्य एव वा।
तथापि भक्तान् भजते यथा तथा
सुरद्रुमो यद्वदुपाश्रितोऽर्थदः॥
(श्रीमद्भा० १०।३८।२२)

'कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू॥'
(मानस ५।४३।½)

भगवान् कल्पवृक्षसे भी श्रेष्ठ हैं, इसका एक दृष्टान्त देखिये—

एक लकड़हारा जंगलमें मार्ग भूल गया। वह भूख-प्याससे परिश्रान्त होकर दैवयोगसे एक कल्पतरुके तले बैठ गया। उसे वहाँ शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन मिलनेसे सुख मिला। अब वह उस वृक्षको बिना कल्पपादप जाने ही कल्पना करने लगा कि 'प्यासा हूँ, कहीं पानी मिल जाता।' यों कामना करते ही तुरंत उसके सामने रत्नपात्रमें जल आ गया और वह उसे पीकर प्रसन्न हो गया। फिर उसे क्षुधा मालूम हुई और वह सोचने लगा कि 'कहीं भोजनका आयोजन हो जाता।' ऐसी बात मनमें आते ही रत्नजटित विशाल स्वर्णथालमें स्वर्गीय भव्य भोज्य पदार्थ भी आ गये। फिर वह आगे कल्पना करने लगा कि 'कुछ नींद-सी आ रही है, सोनेके लिये सुन्दर शय्या हो जाती।' इतनी कल्पना करते ही दुग्धफेनके समान शुभ्र, सुरभित चादरसे आच्छादित गद्देवाला एक विशाल पलंग आ गया। इसी प्रकारकी अनेक कल्पनाएँ करते हुए उसके मनमें आया कि 'घोर जंगल है, कहीं सिंह न आ जाय।' बस, यह सोचते ही उसके सामने सिंह प्रकट हो गया, जिसने उसका काम तमाम कर दिया। अतः संकल्प-कल्पतरु लोकाभिराम श्रीरामकी शरण जाओ। जो लोग मायिक पदार्थोंकी याचना करते हैं, वे उन्हींमें उलझ-पुलझकर समाप्त हो जाते हैं। पर भगवान् तो लाखों कल्पवृक्षोंसे भी श्रेष्ठ हैं— 'भक्तकल्पपादप आरामः।' वे सोच-समझकर परम श्रेष्ठ पदार्थ ही देते हैं।

अकारण-करुणा करुणा-वरुणालय जगज्जननी जनक-किशोरी जानकी और जानकीवल्लभ कौसलकिशोर श्रीराम— इन युगल सरकारकी निर्हेतुकी कृपा स्वातीके सलिलसदृश सबके ऊपर समानभावसे बरसती रहती है। इसमें कोई विषमता नहीं। विषमता पात्रविशेषके अनुसार प्राप्त होती है। पात्र चार प्रकारके होते हैं—विषयी, ज्ञानी, भक्त और उपासक। इनमें विषयी जीवोंको कदली-खंभकी उपमा दी गयी है। स्वाती-जलके कदली-खंभपर पड़नेपर कपूर पैदा होता है और वह क्षणस्थायी होता है। दूसरे—अभेदवादी ज्ञानी है। उसको कमलदलकी उपमा दी गयी है। उसके हृदयमें भगवत्कृपाका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता, उसी प्रकार जैसे कमलदलपर गिरा हुआ जल बिना कोई गुण पैदा किये लुढ़क जाता है। तीसरे—भक्तको उपमा दी जाती है चातकके साथ। चातक स्वाती-जलका अनन्य भक्त अवश्य होता है, किंतु उसका स्थायी रूपान्तर नहीं होता। वही जल उपासकरूपी सीपीमें प्रवेश करनेपर अपने स्वभाव आदिको छोड़कर दिव्य ज्योतिवाला मोती बन जाता है। जल एक ही है; परंतु उससे चार प्रकारके परिणाम पैदा होते हैं। श्रीभगवतरसिकजी महाराज कहते हैं कि जैसा भूमिका भाग्य होता है, भगवान् रामकी कृपाका फल वैसा ही होता है—

यह रस रीति प्रिया-प्रियतम की दिव्य स्वाति जल जैसैं।
बिषई ग्यानी भक्त उपासक प्राप्त सबन को कैसैं॥
कदली कमल पपीहा सीपी, पात्र भेद बहु जैसैं।
'भगवत' बीज विषमता नाहीं, भूमि भाग फल तैसैं॥

भगवान् श्रीरामका वन-गमन-मार्ग

(लेखक—डॉ० श्रीश्यामनारायणजी पाण्डेय, एम्० ए०, पी-एच्०, डी०)

आजकल रामवनवासके भूगोलकी बहुत चर्चा हो रही है। पत्र-पत्रिकाओंमें समय-समयपर लेख भी प्रकाशित होते रहते हैं। डॉ० एच्० डी० संकालियाने कहा है कि 'रामायणके कवि या कवियोंने दक्षिण भारत देखा ही नहीं था।' श्री आर्० एस्० चक्रवर्तीने लङ्काको उड़ीसामें बताया है। श्रीरायकृष्णदासने लङ्काको अमरकण्टकके समीप सिद्ध किया है। श्री वी० एच्० वडेर तथा श्री एफ्० ई० पार्जिटरने भी 'रामायणकालीन भौगोलिक दिग्दर्शन' अपने-अपने ढंगसे कराया है। यहाँ भगवान् श्रीरामके वन-गमन-मार्ग तथा लङ्काकी स्थितिके बारेमें कुछ विचार प्रस्तुत किया जा रहा है।

अयोध्यासे श्रृङ्गवेरपुर—

अयोध्यासे श्रृङ्गवेरपुरतक भगवान् श्रीराम रथपर आये हैं। इससे इस भूभागमें सड़कोंका अच्छा प्रबन्ध रहा होगा, ऐसा स्पष्ट होता है। श्रीरायकृष्णदास अयोध्यासे चलकर पहले दो पड़ावोंकी स्थिति संदिग्ध बताते हैं। श्री वी० एच्० वडेरने वेदश्रुतिको तमसा मानकर और इस नदीकी स्थिति सरयू एवं गोमतीके बीच बताकर प्रारम्भिक भ्रमका निवारण कर दिया है। वे अपने मतके प्रतिपादनमें रघुवंश ९। २० का प्रमाण भी पा जाते हैं। सरयूके दक्षिण स्थित अयोध्यासे १५ मील दक्षिण वर्तमान तमसा (वेदश्रुति) या टोंसके तटपर पहुँचकर श्रीरामजीने पहला पड़ाव डाला था।

गोमती और स्यन्दिका (सई) नदियोंको पारकर दूसरे दिन सुमन्त्रसहित सब लोग गुह निषादके राज्यकी राजधानी श्रृङ्गवेरपुर पहुँचकर गङ्गातटपर ही रातभर ठहरे। श्रृङ्गवेरपुरको 'सिंगरौर' कहा जाता है, जो प्रयागसे १८ मील उत्तरकी ओर है। भगवान् श्रीराम श्रृङ्गवेरपुरमें नहीं गये। दूसरे दिन उन्होंने सुमन्त्रको अयोध्या भेजा और सखा गुहको साथ लेकर दिनके उत्तरार्धमें गङ्गाको पार किया।

भरद्वाज-आश्रम—

गङ्गाके दक्षिणतटपर पहुँचनेके बाद वाल्मीकीय रामायण २। ५४। २ के अनुसार पूर्वकी ओर मार्गमें एक बड़ा वन मिलनेका संकेत है। इस वनमें ६-७ मील चलनेपर दिन बीतता देख वे एक वृक्षके नीचे विश्राम करते हैं और प्रातःकाल भरद्वाज-आश्रमके लिये चल पड़ते हैं। गङ्गा-यमुना-संगमपर भरद्वाजजीका आश्रम था। वहीं प्रयाग क्षेत्र था। भरद्वाज-आश्रम आजकल आनन्द-भवनके सामने माना जाता है। श्रीरायकृष्णदासने लिखा है कि 'अकबरके समयतक गङ्गा उसके नीचे बहती थी; परंतु अकबरने अपना किला बनानेके लिये बाँध बाँधकर गङ्गाकी धार हटा दी थी। यह भरद्वाज-आश्रम श्रृङ्गवेरपुर (सिंगरौर) से लगभग बाईस मीलपर है। पहले दिन ६-७ मील चलकर, फिर दूसरे दिन सोलह-सत्रह मील तय करके रामका तीसरे पहर भरद्वाज-आश्रम पहुँचना उक्त आश्रमकी दूरीके साथ ठीक बैठनेवाली बात है।

चित्रकूट—

महर्षि भरद्वाजने श्रीरामको अपने आश्रमसे दस कोसपर स्थित चित्रकूट जानेके लिये कहा। श्रीराम यमुना पार करते हैं। यमुना पार करनेके बाद एक कोस जानेपर उन्हें नील-कानन मिला। श्रीबेगलरने सर ए० कनिंघमद्वारा प्रकाशित 'आर्कि ऑलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट' भाग १३ के पृष्ठ ४२—५४ तक अपने विचार प्रकट करते हुए चित्रकूटको छत्तीसगढ़की रामगढ़ पहाड़ी बतानेका आग्रह किया है। भगवान् श्रीरामके वन-गमन-मार्गमें चित्रकूट बहुत ही सूक्ष्म विचारकी अपेक्षा रखता है। ध्यान देनेकी बात है कि कनिंघमद्वारा प्रकाशित रिपोर्टमें श्रीबेगलरके विचारको स्वयं श्रीकनिंघमने उसी सर्वे-रिपोर्टके २१ वें भागमें १०—१२ पृष्ठोंपर काट दिया है और आधुनिक चित्रकूटको ही मान्य ठहरा दिया है। पार्जिटर महोदय तो साफ-साफ कह रहे हैं कि रामगढ़को चित्रकूट नहीं माना जा सकता, यह असम्भव है।

वाल्मीकि-रामायणमें चित्रकूटमें दो नदियों—मन्दाकिनी और मालिनीके होनेका वर्णन आया है। पहाड़ीके उत्तर ओर मन्दाकिनीकी बड़ी धारा बतायी गयी है। श्रीकनिंघमने मन्दाकिनीको आजकी मन्दाकिनीके रूपमें और मालिनीको पयस्विनीके रूपमें पहचाना है, जो पश्चिम ओर बहती हुई आजकल 'परसोनी' कही जाती है।

चित्रकूट रेलवे-स्टेशनसे तीन-चार मील दूर आजका कामतानाथगिरि है। चित्रकूटके उत्तरकी उपत्यकापर जो एक चौकोर शिला है, वही 'सीता-सेज' है, जिसका वर्णन वाल्मीकिरामायण २। ९६। १ में हुआ है। यह बसौदा स्टेशनके समीप ही दक्षिणमें है।

अत्रि और शरभङ्ग मुनिका आश्रम—

चित्रकूट-निवासके समय जब भरत श्रीरामकी आज्ञासे अयोध्या लौट गये, तब खर राक्षसद्वारा जनपदके सब तपस्वियों-के भगाये और सताये जानेकी शिकायत भगवान् श्रीरामके

पास आयी; अतएव उनका नाश करनेके लिये श्रीरामचन्द्रजी अत्रि-आश्रमकी ओर चल पड़े। वनमें प्रवेश करनेपर पहले विराध नामक राक्षस मिला। इसे मारकर वे शरभङ्ग मुनिके आश्रममें पहुँचे। चित्रकूटसे दक्षिण १० मीलपर अत्रि या अनसूया-आश्रम है। उससे तीन मील दक्षिण विराध-कुण्ड है। वहाँसे दक्षिण नरवर भोपालकी ओर शरभङ्ग-आश्रम है। रामायण (३। ४। २१) के अनुसार दी हुई विराध-कुण्डसे शरभङ्ग-आश्रमकी डेढ़ योजनकी दूरी ठीक बैठती है। साथ ही एक नदी दक्षिण-पूर्वसे आकर मन्दाकिनीमें मिलती है, जिसे आज भी 'शरभङ्गा' कहते हैं। इस तरह इतनी भौगोलिक सामग्रीका साक्ष्य मिल जाता है। महामहोपाध्याय डॉ० वा० वि० मिराशीने अपने शोधकार्यमे इस क्षेत्रका महत्त्व बहुत बढ़ा दिया है।

सुतीक्ष्ण मुनिका आश्रम—

भगवान् श्रीराम शरभङ्ग मुनिसे मिलकर उनकी आज्ञासे सुतीक्ष्ण मुनिके आश्रमकी ओर जानेके लिये तैयारी कर ही रहे थे कि इसके पूर्व ही शरभङ्ग मुनिने भगवान् श्रीरामके समक्ष अग्निप्रवेश कर देहत्याग कर दिया। सुतीक्ष्ण मुनिका आश्रम मन्दाकिनी नदीके उद्गमकी ओर था। वाल्मीकिरामायण (३। ५। ३७)में श्रीरामके मन्दाकिनीके प्रतिस्रोत अर्थात् उद्गमकी ओर जाने और कई नदियोंको पार करनेकी बात लिखी गयी है। वहाँ एक ऊँचे शैलपर सुतीक्ष्ण मुनिका निवास था (३। ७। २)। उक्त वेगवती नदी श्रीरायकृष्णदासकी दृष्टिमें 'केन' ठहरती है और श्रीपार्जिटर नर्मदाकी ऊपरी धाराको महाजव या वेगवती नदी मानते हैं, जो सोहागपुर और नरसिंहपुरके बीच पड़ती है। इनके हिसाबसे पँचमढ़ीमें नीलवन और वेनगंगाके ऊपरी भागमें सुतीक्ष्ण-आश्रम होना चाहिये, जो समीचीन जान पड़ता है।

दण्डकारण्य, पञ्चवटी और जनस्थान

सुतीक्ष्ण मुनिका आश्रम दण्डकारण्यके उत्तरी भागमें बिजावर राज्यमें मान लेनेमें कोई आपत्ति नहीं है। यहींसे श्रीरामचन्द्रजी समग्र दण्डकारण्य तथा उसमें वास करनेवाले ऋषियोंके आश्रम देखने चले। मार्गमें उन्होंने ८ वर्गमीलका एक महान् सरोवर देखा। धर्मभृत् नामक मुनिने श्रीरामसे कहा कि "यह सरोवर माण्डकर्णि मुनिकी घोर तपस्याके फल-स्वरूप निर्मित हुआ है और इसका नाम 'पञ्चाप्सर-सरोवर' है एवं यह सार्वकालिक है।" (देखिये—वाल्मीकि० ३। ११। ११–२०) इस सरोवरके बारेमें श्रीनन्दलाल देका कहना है कि 'छोटा नागपुरके माण्डलिक क्षेत्रके उदयपुर नामक स्थानमें यह सरोवर था। इस सरोवरका अधिकांश सूख गया है और वहाँ कपु-बन्धनपुर आदि गाँव बस गये हैं।' पार्जिटर महोदय बुन्देलखण्डसे दक्षिण कृष्णा नदीतकके पूरे क्षेत्रको 'दण्डकारण्य' कहते हैं और वाल्मीकि-रामायण (अयोध्या० ९१। ५९) के अनुसार इसे यमुना नदीतक विस्तृत कर देते हैं।

सुतीक्ष्ण मुनिने भगवान् श्रीरामको बताया कि 'चार योजन दक्षिण पिप्पलीके वनमें अगस्त्यजीके भाईका आश्रम है। उससे एक योजन दक्षिण अगस्त्याश्रम है। दो योजनपर पञ्चवटी है। पास ही गोदावरी है। महुआ और वट वृक्षोंके निकट जो ऊँची भूमि है, वही पञ्चवटी है।' (वा० रा० ३। १३। १३, १८, २१) पद्मश्री रायकृष्णदासके विवेचनके अनुसार पञ्चवटी केन नदीके उद्गमपर स्थित थी।

केनके उद्गमके निकट पञ्चवटी माननेमें बाधा यह है कि अगस्त्यने उसे गोदावरी-तीरपर बताया है। इस प्रदेशपर राक्षसोंका बारंबार आक्रमण होता था। पञ्चवटी जाते हुए श्रीरामकी एक महाकाय गीध पक्षी (जटायु) से भेंट हुई। इस प्रदेशका वर्णन वाल्मीकि-रामायण ३। १५ में है। पञ्चवटीमें पर्णशाला बनाकर उन्होंने एक चातुर्मास्य व्यतीत किया। तत्पश्चात् हेमन्त ऋतुका आरम्भ होनेपर एक दिन प्रातःकाल रावणकी भगिनी शूर्पणखा उस आश्रममें पहुँची थी। जब लक्ष्मणने नाक-कान काटकर उसे निकाल बाहर किया, तब वह खर-दूषणके पास जाकर उन्हें श्रीरामसे युद्ध करनेके लिये प्रोत्साहितकर अपने साथ ले आयी। खर और दूषण १४ हजार सैनिक लेकर जनस्थानसे चले।

पञ्चवटी और जनस्थानके बारेमें न तो पद्मश्री रायकृष्ण-दास और न श्रीबडेर ही कुछ निश्चयपूर्वक कहनेकी स्थितिमें हैं। डॉ० संकलिया और श्रीचक्रवर्ती भाषा और अँगूठी आदिके सहारे जो कुछ कह रहे हैं, उनसे पञ्चवटी और जन-स्थानके सम्बन्धमें कुछ ज्ञात होनेकी आशा नहीं है। पञ्चवटी और जनस्थानके बारेमें विद्वानोंको बड़ा भ्रम हो रहा है। इसकी स्थिति ढूँढ़नेमें उड़ीसाकी ओर या मध्यप्रदेशके उत्तर-पूर्वकी ओर वे विद्वान् भटकते रह जाते हैं।

पञ्चवटी और जनस्थानकी स्थितिका संकेत श्रीपार्जिटर महोदयके एक स्वीकारात्मक वाक्यसे और पद्मश्री रायकृष्ण-दासके एक नकारात्मक वाक्यसे मिलता है। महाभारतके द्रोणपर्वमें कहा गया है कि 'जनस्थान राक्षसोंद्वारा आक्रान्त था। श्रीरामने राक्षसोंको मारकर इसे फिर राक्षसरहित बनाया।' महर्षि वाल्मीकिने भगवान् श्रीरामके लौटते समयके वर्णनमें कितना स्पष्ट कर दिया है कि गोदावरी नदी आनेके

पहले ही जनस्थान आया। पार्जिटर महोदयने यहाँतक सम्भावना व्यक्त कर दी है कि जनस्थान गोदावरीके दोनों ओर बसा था—जहाँ प्राणहिता या वेनगंगा गोदावरीमें मिलती हैं।

इस तरह दण्डकारण्य भोपालके आस-पासका क्षेत्र है, जहाँसे गोदावरी निकलती है। नदीके दोनों ओर जनस्थान हुआ। गोदावरीके उत्तर अगस्त्याश्रम हुआ और नासिक-पञ्चवटी हुई।

क्रौञ्चारण्य और मतंगाश्रम-वन—

रोहिण पर्वतकी उपत्यकामें श्रीरामने स्वर्णमृगका वध किया। भगवान् श्रीरामको जनस्थानसे तीन कोस चलनेपर क्रौञ्चारण्य मिला। रावणके सीतापहरण करनेपर श्रीरामचन्द्र-जीने उन्हें खोजनेके लिये जनस्थान छोड़ा। क्रौञ्चारण्यके पूर्व तीन कोसपर मतंगाश्रम-वन था। आगे एक गहरे दरेंमें उन्हें अयोमुखी राक्षसी मिली। उसे मारकर श्रीराम-लक्ष्मणने गहन वनमें प्रवेश किया। वहाँ कबन्ध राक्षस मिला, जिसने मुक्ति पानेके पूर्व श्रीराम-लक्ष्मणको सलाह दी कि वे लोग सुग्रीवसे मित्रता करें।

बेलारीसे पूर्वकी ओर समुद्र-तटतक छोटे-बड़े पर्वतोंकी पूर्वसे पश्चिम ओर फैली हुई श्रेणियाँ हैं। बेलारीसे पूर्व छः मीलपर लोहाचल नामका एक पर्वत है। इसे ही प्राचीन समयमें 'क्रौञ्चपर्वत' कहते थे। वहाँ एक तीर्थ है। उस क्षेत्रमें प्राचीन कालमें अगस्त्य ऋषि आये थे। क्रौञ्चारण्य अति गहन था, ऐसा रामायणमें वर्णन मिलता है। श्रीवडेरके अनुसार कृष्णा नदीके दक्षिणी तटके गुंटकल और नंदयाल प्रदेशोंको प्राचीन समयमें क्रौञ्चारण्य कहते होंगे। क्रौञ्चरवा नदी तो निस्संदेह गोदावरीके दक्षिण होगी। प्राचीन ग्रन्थोंमें कृष्णा नदीका नाम कहीं भी दिखलायी नहीं देता। वास्तवमें इसका पूर्वी भाग उस समय जलमग्न रहा है और ऊपरी छोटी नदी कृष्णावेणी आज भी इसकी शिलाके रूपमें उद्घोष कर रही है।

महाभारतके रामोपाख्यानके एक वर्णनसे विद्वानोंमें भ्रम फैला है। दण्डकारण्यमें जहाँ कबन्ध मिला, वह क्रौञ्चालय था—ऐसा विवरण इस भ्रामक तथ्यके साथ जुड़ गया है कि कबन्धसे मिलनेके पूर्व मन्दाकिनी नदीको श्रीरामने पार किया। कहाँ तो यह मन्दाकिनी नदी दक्षिणापथमें मिलती है और विद्वानोंने इसका मेल चित्रकूटसे बैठाना शुरू कर दिया है। गोदावरीकी दक्षिणी सहायक नदी मञ्जीराका पुराना नाम मन्दाकिनी है। कौलासके निकट श्रीरामने मञ्जीराको पार किया होगा, ऐसा श्रीपार्जिटरका विचार है। फिर वे बालाघाटकी पहाड़ियोंके दक्षिणी छोरपर पहुँचे होंगे, जो मञ्जीरा और गोदावरीके बीच है। इसके पश्चिमी ढालके बीच ही कहीं कबन्ध मिला होगा, जहाँसे उसने उन्हें पम्पा और ऋष्यमूक जानेकी सलाह दी होगी और कुछ दूर चलकर मार्ग दिखा दिया होगा।

पम्पासर और ऋष्यमूक पर्वत—

भगवान् श्रीरामने नन्दनवनके समान एक सुन्दर वनमें प्रवेश किया। वे पम्पासरके पश्चिमी तटपर जा पहुँचे। पम्पासर-के सामने ऋष्यमूक पर्वत था। पम्पाके पश्चिम तटपर उन्होंने कुछ कालतक निवास किया। वहाँ शबरी श्रीरामके चित्रकूट छोड़नेके समयसे उनकी प्रतीक्षामें आश्रम बनाकर रहती थी। इस प्रदेशका नाम रामायणमें मतङ्ग-वन दिया हुआ है। इतनी दूर आ जानेपर ऊपर दिये हुए वर्णनमें जो 'मतंगाश्रम-वन'का वर्णन आया है, उसको इससे पृथक् समझना चाहिये। मतंग नामके ऋषिके दो स्थानपर रहनेसे या दो पृथक्-पृथक् ऋषियोंके नामपर इसका नामकरण हुआ होगा। यहाँ सप्तसागर है, जिसमें भगवान् रामने स्नान और पितृतर्पण किया था। (वा० रा० ३। ७५। ४)

पम्पाके लिये महाभारतके रामोपाख्यान (३। २७९। ४४) में लिखा है कि जहाँ कबन्ध मिला था, वहाँसे थोड़ी ही दूरीपर पम्पा दिखायी दे रही थी। वाल्मीकि-रामायण (३। ७४। ३) में लिखा है कि यह दूरी दो दिनमें तय करनेयोग्य थी। इस तरह दो दिन पूर्व जानेपर श्रीराम पम्पा पहुँचे। पार्जिटर महोदयका कथन ठीक लगता है कि ऋष्यमूक पर्वतके पश्चिम दिशामें स्थित पम्पा पहुँचनेके लिये पश्चिमकी ओरसे ही घूमकर जाना पड़ा होगा। अहमदनगरसे नलदुग और कल्याणीकी ओर मञ्जीरा और भीमा नदियोंके बीचकी पहाड़ी और पश्चिमकी ओर शोलापुरके निकट पम्पासर होना चाहिये। आजकल उसकी स्थिति विजयनगरके समीप अनागुदि ग्रामसे लगभग दो मीलपर बतलायी जाती है।

किष्किन्धा—

मलय, प्रस्रवण एवं माल्यवान् पर्वतोंके सम्बन्धमें विद्वानोंद्वारा की गयी अनेक प्रकारकी धारणाएँ किष्किन्धाको कई जगह उठा ले जाती हैं। इस तरह किष्किन्धा 'भगवान् श्रीरामके वन-गमन-मार्ग'का बहुत ही विवेच्य स्थान बन जाता है। पहले अन्य छोटी-छोटी समस्याओंको सुलझाकर फिर किष्किन्धापर एक साथ सब समस्याओंसहित विचार किया जाय तो अच्छा होगा—

१—माल्यवान् और प्रस्रवण एक ही पर्वतके नाम हैं। इस तरह चित्रकूटके पासवाले प्रस्रवणका दक्षिणके इस पर्वतके साथ भ्रमवश जो एकीकरण किया गया है, उसका निराकरण होगा। महाभारतका 'रामोपाख्यान' इस समस्याका समाधान प्रस्तुत करता है। कृष्णा और भीमा नामकी नदियोंके संगमके पास ही श्रीरामके हाथों वालीका वध हुआ था, ऐसी वहाँके लोगोंकी धारणा है तथा जहाँ भगवान्ने उसके बाद चार मास विश्राम किया था, उसका सम्बन्ध प्रस्रवण और माल्यवान्—इन दोनोंके साथ जोड़ा जाता है, जो एक ही पर्वतके नाम हैं। (देखिये, वा० रा० ४ । २७ । १, ४ । २९ । १)

२—मलयपर्वतके उत्तरी शिखरपर वालीके कूदकर जानेका वर्णन मिलता है। ट्रावंकोरकी पहाड़ियोंका नाम भी 'मलय' है। पश्चिमी घाटके सबसे दक्षिणमें स्थित पहाड़ोंका नाम भी 'मलय' है। माल्यवंत ही 'मलयपर्वत' है और द्रविड़ भाषामें मलयका अर्थ पर्वत भी है।

इस तरह माल्यवंत, प्रस्रवण और मलय जब एक ही पर्वतके पर्यायवाची शब्द हो जाते हैं तो लङ्काके विभिन्न क्षेत्रोंमें माने जानेका भेद खुल जाता है। पार्जिटर महोदयने इस गूढ़ विषयका विस्तारसे प्रतिपादन किया है।

वाल्मीकि-रामायणके अनुसार किष्किन्धा देशमें ही माल्यवंत पर्वत रहा है। यह ऋष्यमूकके नजदीक ही रहा होगा, नहीं तो सुग्रीवकी सुरक्षा कैसे होती। किष्किन्धा देशकी राजधानीका नाम भी किष्किन्धा था। माल्यवंत पर्वतको किष्किन्धाके फाटकके नामसे भी कहा गया है।

माल्यवंत पर्वत श्रीपार्जिटरके अनुसार रायचूरके निकट है और किष्किन्धा बेलारी है। यहाँ तुङ्गभद्रा और वेदवती—दो मुख्य नदियाँ हैं। सीवेल किष्किन्धाको विजयनगरके समीप बताते हैं।

किष्किन्धाके सम्बन्धमें श्रीवडेरने और भी तथ्य जुटाये हैं। अञ्जनी पर्वत और वालीकी गुहा भी समीप ही हैं। भवभूति और बालरामायणकार कवि राजशेखर भी किष्किन्धाको तुङ्गभद्राके समीप ही मानते हैं। महाभारतमें दक्षिणके देशोंकी सूचीमें किष्किन्धाका नाम आया है।

लङ्का—

सम्पातीसे श्रीहनुमान्‌जीको लङ्काका परिचय इस प्रकार मिलता है—

इतो द्वीपे समुद्रस्य सम्पूर्णे शतयोजने।
तस्मिँल्लङ्का पुरी रम्या निर्मिता विश्वकर्मणा ॥
(वा० रा० ४ । ५८ । २०)

'यहाँसे पूरे चार सौ कोसके अन्तरपर समुद्रमें एक द्वीप है, जहाँ विश्वकर्माने अत्यन्त रमणीय लङ्कापुरीका निर्माण किया है।'

चाक्षुष्मती विद्याके प्रभावसे वह सौ योजन दूरका दृश्य भी देख सकता था। उसी विद्यासे प्राप्त दिव्यदृष्टिके कारण यह पता उसने विन्ध्यपर्वतपर बैठे-बैठे देखकर बताया था। केरलके उत्तरी भागका मलयपर्वत भी जब (द्वितीय) विन्ध्य सिद्ध हो गया, तब यहाँसे देखनेपर समुद्रमें आज जहाँ लक्कादिव-मालदिव हैं, वहाँ लङ्का १०० योजनपर केरलके पश्चिम होनी चाहिये। भौगोलिक दृष्टिसे वर्तमान लङ्का या सिंहल तो दक्षिणी भारतका मिला हुआ भाग रहा है। प्रश्न लङ्काकी स्थितिके बारेमें है। कुछ लोग वर्तमान सिलोनको ही प्राचीन लङ्का मानते हैं, परंतु मेरे विचारसे वर्तमान सिलोन या सिंहलके रहते हुए एक और लङ्का थी, जो समुद्रमें डूब चुकी है और जिसकी भौगोलिक स्थिति केरलके पश्चिममें थी। इसीका अवशेष लक्कादिव-मालदिवके रूपमें है। इस मान्यताके आधार इस प्रकार हैं—

(१) बालरामायणकार कवि राजशेखरने राम-वनवासका बहुत ही व्यवस्थित वर्णन किया है। उन्होंने किष्किन्धाको तुङ्गभद्राके निकट स्वीकार किया है। अतः उनका सीता-स्वयंवरके अवसरपर सिंहलनरेश राजशेखर-के साथ लङ्कापति रावणका संवाद कैसे झूठा मान लिया जाय, जब कि पुष्पक विमानसे आते समय लङ्कासे कुछ दूर चलकर विभीषण भी कहते हैं कि यह सिंहल है।

(२) भागवत (१ । १९ । ३०)में श्रीशुकदेवजीने जम्बू-द्वीपके आठ उपद्वीप गिनाये हैं। उनमें भी लङ्का एवं सिंहल भिन्न-भिन्न हैं।

(३) मार्कण्डेयपुराणमें दक्षिणके देशोंमें लङ्का एवं सिंहल पृथक्-पृथक् आये हैं।

(४) बृहत्संहितामें वराहमिहिरने भी दोनोंका विवरण दिया है।

(५) भगवान् श्रीकृष्णने वनवासी युधिष्ठिरसे राजसूय-के समय आये राजाओंमें भी दोनों द्वीपोंका नाम लिया है—

'सिंहलान् बर्बरान् म्लेच्छान् ये च लङ्कानिवासिनः।'

(६) लङ्काका वर्णन और समुद्रमें स्थलसे दूरी दोनों ही वर्तमान सिंहलसे मेल नहीं खाती।

श्रीरामकी लीला-सम्बन्धी घटनाओंकी तिथिक्रमानुसार तालिका

(१)

श्रीरामजन्मके पूर्वसे विवाहोत्सवपर्यन्त

(प्रेषक—श्रीअवधकिशोरदासजी श्रीवैष्णव)

चैत्र पूर्णिमा—अश्वमेध-यज्ञका कार्यारम्भ (प्रथम वर्षमें)।

चैत्र अमावस्या—यज्ञदीक्षा, अश्वयात्रा (द्वितीय वर्षमें)।

चैत्र शुक्ल १—पुत्रेष्टि-यज्ञ (तृतीय वर्षमें)।

चैत्र शुक्ल ७—प्राजापत्य पुरुषद्वारा पायस-प्रसाद-प्राप्ति तथा श्रीदशरथकी रानियोंका गर्भवती होना।

चैत्र शुक्ल ९—श्रीराम-जन्म । पुनर्वसु, चन्द्रवार (चतुर्थ वर्षमें)।

चैत्र शुक्ल १०—श्रीभरत-जन्म । पुष्य, मङ्गलवार।

चैत्र शुक्ल ११—श्रीलक्ष्मण-शत्रुघ्न-जन्म । आश्लेषा, बुधवार।

चैत्र शुक्ल १४—छठी-उत्सव।

वैशाख कृष्ण ५—बरही, जन्माशौच-निवृत्ति।

वैशाख कृष्ण ६—नामकरण-संस्कार।

आश्विन शुक्लपक्ष—अन्नप्राशन (छठे महीनेमें)।

चैत्र शुक्ल ५—विद्यारम्भ (पाँच वर्षकी आयुमें)।

चैत्र शुक्लपक्ष—यज्ञोपवीत (ग्यारहवें वर्षमें)।

आश्विन कृष्ण ६—पंद्रहवें वर्षमें विश्वामित्र-आगमन।

आश्विन कृष्ण १२—सोलह वर्षकी आयुमें सिद्धाश्रम-प्रस्थान तथा उस दिन श्रीसरयूके उत्तर तटपर ६ कोस चलकर विश्राम एवं बला-अतिबला विद्याकी विश्वामित्रजीद्वारा प्राप्ति।

आश्विन कृष्ण १३—श्रीसरयू-गङ्गा-संगमपर कामाश्रममें निवास।

आश्विन कृष्ण १४—ताड़का-वनकी शापमुक्ति तथा उस रात्रिमें वहीं निवास।

आश्विन अमावस्या—महामुनि विश्वामित्रजीसे सम्पूर्ण अस्त्रोंकी मन्त्र-प्रयोगसहित प्राप्ति तथा उपसंहार-क्रियाका ज्ञान । उसी दिन सिद्धाश्रममें जाना, मुनियोंद्वारा सत्कार । दो घड़ी विश्राम कर विश्वामित्रको यज्ञारम्भके लिये श्रीरामकी सत्प्रेरणा।

आश्विन शुक्ल १ से ६ तक—निरन्तर अहोरात्र यज्ञ-संरक्षण तथा छठे दिन राक्षस-संहार । ऋषियोंद्वारा रामका पूजन।

आश्विन शुक्ल ७—यज्ञ-पूर्णाहुति; विश्वामित्रकी कृतार्थता तथा सिद्धाश्रमको यथानाम सुयश-प्राप्ति एवं श्रीराम-लक्ष्मणको आशीर्वाद-प्राप्ति । रात्रिमें यज्ञशालामें ही विश्राम।

आश्विन शुक्ल ८ से ९—सिद्धाश्रममें निवास।

आश्विन शुक्ल १०—विजयादशमीको विजयमुहूर्तमें श्रीमिथिला-यात्रा तथा शोणभद्र-तटपर रात्रि-निवास।

आश्विन शुक्ल ११—गङ्गातटपर निवास।

आश्विन शुक्ल १२—विशालापुरीमें राजा सुमतिका आतिथ्य-ग्रहण।

आश्विन शुक्ल १३—गौतमाश्रममें अहल्या-उद्धार तथा अहल्या एवं गौतममुनिद्वारा श्रीरामका पूजन । जनकपुर पहुँचना तथा श्रीविदेहराजद्वारा सत्कार।

आश्विन शुक्ल १४—बाग-तड़ाग-दर्शन; प्रिया-प्रियतमका प्रेम-दर्शन; नगर-दर्शन; धनुर्यागभूमिका निरीक्षण।

आश्विन शुक्ल १५—शरत्पूर्णिमाके दिन शिव-धनुर्भङ्ग; विजय-माल्यार्पण; मन्त्रियोंको अयोध्याजी भेजना; विवाह-मण्डप-निर्माण तथा विवाहकी सम्पूर्ण तैयारी-हेतु विदेहराजद्वारा आज्ञा।

कार्तिक कृष्ण ४—राजा दशरथको विदेहराजके मन्त्रियोंद्वारा श्रीराम-लक्ष्मणके समाचारकी प्राप्ति तथा श्रीरामविवाहार्थ श्रीचक्रवर्ती महाराज दशरथजीको आमन्त्रण । उस दिन विदेहमन्त्रियोंका सत्कारपूर्वक वहीं निवास तथा बरात-की तैयारीकी आज्ञा।

कार्तिक कृष्ण ५—मन्त्रियोंका पुनः जनकपुरको प्रस्थान।

कार्तिक कृष्ण ८—बरातका मिथिलाकी ओर मङ्गल मुहूर्तमें प्रस्थान।

कार्तिक कृष्ण १३—बरातका जनकराजद्वारा जनकपुरधाममें श्रेष्ठ सत्कार।

कार्तिक कृष्ण १४—जनवासामें यथोचित सत्कारसहित निवास।

कार्तिक कृष्ण १५—दीपावलीके दिन गृह-लक्ष्मीस्वरूप कन्याका निरीक्षण तथा पूजन एवं चक्रवर्ती राजराजेन्द्र दशरथके सत्कारमें दीपावलीका आयोजन।

मार्गशीर्ष शुक्ल ४ तक—एक महीना सात दिन बरातियोंका जनकपुरमें सानन्द निवास।

मार्गशीर्ष शुक्ल ५—श्रीविवाह-पञ्चमीके दिन मङ्गल-मोदमय शुभ मुहूर्तमें सच्चिदानन्द दिव्य-दम्पति श्रीसीतारामजीका वेद-विधानपूर्वक शुभ विवाहोत्सव।

मार्गशीर्ष शुक्ल ७—श्रीरामकलेवा, जेवनार।

(२)

श्रीराम-वनवाससे राज्याभिषेकपर्यन्त*

(लेखक—स्वामीजी श्रीपुरुषोत्तमाश्रमजी उपनाम शतपथजी महाराज)

प्रतिवर्ष दीपावलीके दिनोंमें अनेकों सज्जन समाचार-पत्रोंद्वारा रावण-वध तथा अयोध्यापति भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी विजयके तिथि-मासको जाननेकी इच्छा प्रकट करते रहते हैं। उनकी इस शुभेच्छासे प्रेरित होकर महर्षि वाल्मीकिकृत रामायणके वचनोंके आधारपर यह लेख लिखा गया है। विद्वान् महानुभाव इस लेखका मनन करें। यहाँ यह बात अवश्य ध्यानमें रखनी चाहिये कि प्रत्येक कल्पमें राम-रावण-युद्ध होता है और भगवान् श्रीरामके हाथोंसे मृत्यु पाकर रावण पुनरागमनसे रहित भी हो जाता है। इसीलिये किसी कल्पमें जय-विजय तो अन्य कल्पोंमें जलन्धर-प्रतापभानु तथा नारदके शापसे पतित दो शिवगण आदि रावण-कुम्भकर्ण बने थे (देखिये तुलसीकृत रामचरितमानस)। इसके अतिरिक्त प्रति कल्पके राम-रावण-युद्ध तथा रामचरित आदिमें भी थोड़ा-बहुत अन्तर रहता ही है; फलतः भिन्न-भिन्न पुराणोंमें भिन्न-भिन्न रीतिसे इनका वर्णन मिलता है। जैसे अग्निवेशकृत रामायणमें रावण-वध और रामविजयकी जो तिथियाँ लिखी गयी हैं, उनसे कालिकापुराणोक्त रावण-वध और रामविजयकी तिथियाँ भिन्न हैं एवं इन दोनोंसे महर्षि वाल्मीकिप्रणीत रामायणके रावण-वध और रामविजयकी तिथियोंमें अन्तर है। मैंने केवल महर्षि वाल्मीकिके मूल श्लोकोंके आधारपर ही राम-रावण-युद्ध और श्रीरामचन्द्रजीकी विजयके तिथि-मासका निर्णय करनेकी चेष्टा की है। पाठक महोदयोंको इसे ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिये।

जिस दिन रावणने श्रीसीताजीका पञ्चवटीसे अपहरण कर विमानद्वारा उन्हें लङ्काकी अशोकवाटिकामें पहुँचाया था, उसी दिन उसने उनको धमकी दी थी कि यदि तुम बारह महीनेके भीतर मुझे अङ्गीकार नहीं कर लोगी तो तुम्हारा सिर काटकर उसका भोजन बनाया जायगा।[1] उसके बाद जब श्रीहनुमान्जी श्रीसीताजीकी खोज करते हुए लङ्काकी उस अशोकवाटिकामें पहुँचे, तब श्रीसीताजीने भी उनसे रावणकी वह धमकी सुनायी और कहा कि 'रावणने बारह मासतक मेरे जीवनकी अवधि बतलायी थी, उसमेंसे केवल दो मास बाकी रह गये हैं। आज दसवाँ महीना समाप्त हो रहा है। इन दो महीनोंके भीतर यदि रावणका वध और भगवान् श्रीरामकी प्राप्ति मुझे नहीं हो जायगी तो अवश्य ही मेरी मृत्यु होगी।'[2] श्रीसीताजी और भी शपथपूर्वक कहने लगीं—'मेरे स्वामी भगवान् श्रीरामचन्द्रजीसे कहना कि मैं केवल दो महीनेतक और जीवित रहूँगी। भगवान् श्रीरामजी लङ्कामें स्वयं पधारकर रावणका वध करें और मुझे प्राणदान दें।'[3]

---

* रामचरित्र-सम्बन्धी मुख्य घटनाओंके तिथि-निर्णयपर महर्षि अग्निवेशका एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है, जिसे 'अग्निवेश-रामायण', 'समयादर्श-रामायण', 'सार-रामायण', या 'रामायण-सार-संग्रह' भी कहते हैं। इसके अतिरिक्त 'कालिकापुराण', 'देवीभागवत', 'स्कन्दपुराण (धर्मारण्यखण्ड)', 'महानाटक', 'भट्टिकाव्य' एवं श्रीमद्वाल्मीकि-रामायणकी 'भूषण-तिलक' तथा 'शिरोमणि' नामकी टीकाओंमें भी जगह-जगहपर लीलाओंका तिथि-निर्देश किया गया है। 'कल्याण'के 'रामायणाङ्क'में भी पृष्ठ ३०२ से ३०६ तक इस विषयपर दो लेख प्रकाशित हो चुके हैं। प्रायः सबने 'वाल्मीकिरामायण'को ही मुख्य आधार मानकर अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार समय-निर्णयकी चेष्टा की है। हमारी इन सबके प्रयत्नोंके प्रति श्रद्धाबुद्धि है और अपने परिश्रमके लिये सभी साधुवादके पात्र हैं।

—सम्पादक

---

१. शृणु मैथिलि मद्वाक्यं मासान् द्वादश भामिनि ॥
कालेनानेन नाभ्येषि यदि मां चारुहासिनि।
ततस्त्वां प्रातराशार्थं सूदाश्छेत्स्यन्ति लेशशः ॥
(वाल्मीकीय रामायण, अर० ५६। २४-२५)

२. अयं संवत्सरः कालस्तावद्धि मम जीवितम् ॥
वर्तते दशमो मासो द्वौ तु शेषौ प्लवंगम।
रावणेन नृशंसेन समयो यः कृतो मम ॥
(वा० रा०, सु० का० ३७। ७-८)

३. इदं ब्रूयाश्च मे नाथं शूरं रामं पुनः पुनः।
जीवितं धारयिष्यामि मासं दशरथात्मज ॥

अस्तु, श्रीसीताजीकी इस सत्यप्रतिज्ञासे यह बात निश्चितरूपसे प्रतीत होती है कि सीता-हनुमान्-सम्भाषणके दो महीने अर्थात् ६० दिनके भीतर ही रावणका वध हुआ और भगवान् श्रीरामको श्रीसीताजी प्राप्त हो गयीं।

'चैत्रवैशाखौ वसन्तर्तुः। ज्येष्ठाषाढौ ग्रीष्मर्तुः। श्रावण-भाद्रपदौ वर्षर्तुः। आश्विनकार्तिकौ शरदृतुः। मार्गशीर्षपौषौ हेमन्तर्तुः। माघफाल्गुनौ शिशिरर्तुः।'

—इन ऋतु-परिभाषाओंको पाठक याद रक्खें और यह भी याद रक्खें कि आश्विन-पौर्णमासीके दिन अश्विनी, कार्तिक-पौर्णमासीके दिन कृत्तिका, मार्गशीर्ष-पौर्णमासीके दिन मृगशिरा नक्षत्र प्रायः होता है। साथ-ही-साथ यह भी याद रखनेकी बात है कि महाभारतके विराट-पर्वमें वनवास चाहनेवाले पाण्डवोंको भीष्मने जिस प्रकार वर्ष-मास गिननेकी रीति[४] बतलायी है, उसी प्रकार श्रीराम-वनवासके वर्ष-मास भी गिने गये थे। वह रीति इस प्रकार है—जिस वर्ष अधिक मास आता था, उस वर्ष १३ महीने और जिस वर्ष क्षयमास आता था, उस वर्ष ११ महीने माने जाते थे। श्रीराम-वनवासके १४ वर्षोंमें अधिक मास ५ हो सकते हैं, परंतु इतने दिनोंके बीचमें क्षयमास एक भी नहीं आया, इसलिये अधिक मास ५ रहे। इन पाँच अधिक मासोंको १४ वर्षमेंसे घटानेसे १३ वर्ष ७ महीने हुए, जिनको भगवान् श्रीरामकी २५ वीं वर्ष-गाँठके तिथि-मास (चैत्रशुक्ला ९, पुष्य नक्षत्र) में मिलानेसे यह सिद्ध होता है कि ३८ वीं वर्षगाँठ (चैत्र शु० ९) के अनन्तर ठीक ७ महीनेमें, अर्थात् कार्तिकशुक्ला नवमीको वनवास समाप्त हो जाना चाहिये। परंतु २५ वीं वर्षगाँठके दिन, जब भगवान् श्रीराम वनवासके लिये विदा हुए थे, पुष्य नक्षत्र पड़ा था। इसलिये पुष्य नक्षत्र आनेपर ही वनवासकी समाप्ति मानी जायगी। यह पुष्य नक्षत्र बादमें मार्गशीर्ष कृष्ण ६ को (आजकल भी प्रायः मार्गशीर्ष कृष्ण ५ या ६ को ही पुष्य नक्षत्र आया करता है) आया, इसलिये श्रीरामचन्द्रजी मार्गशीर्ष कृष्ण ६को ही अयोध्यामें पधारकर श्रीभरतजीसे तथा माताओंसे मिले। उस समय भगवान् श्रीरामकी उम्र ३९ वर्ष, ८ महीने ११ दिनकी थी। श्रीरामचन्द्रजीकी वर्षगाँठ प्रतिवर्ष उनके जन्मदिन अर्थात् चैत्र शुक्ला ९ कोही मनायी जाती थी। २६ वें वर्षकी उम्रमें[६] चैत्र[७] शुक्ला नवमी, पुष्य[८] नक्षत्रके दिन उनका राज्याभिषेक होनेवाला था, परंतु दैववशात् उसी दिन उन्हें

ऊर्ध्वं मासान्न जीवेयं सत्येनाहं ब्रवीमि ते।
(वा० रा०, सु० का० ३८। ६४-६५)

नोट—यहाँ 'मासात्' पदसे 'द्वाभ्यां मासाभ्यां' समझना चाहिये। टीका देखिये।

४. पञ्चमे पञ्चमे वर्षे द्वौ मासावुपजायतः।
एषामभ्यधिका मासाः पञ्चमे द्वादश क्षपाः॥
त्रयोदशानां वर्षाणामिति मे वर्तते मतिः॥
(महाभारत, विराटपर्व, ५२। ३-४)

५. पूर्णे चतुर्दशे वर्षे पञ्चम्यां लक्ष्मणाग्रजः।
भरद्वाजाश्रमं प्राप्य ववन्दे नियतो मुनिम्॥
(वा० रा०, यु० का० १२४। १)

तदा भरद्वाज आह—

अर्घ्यं प्रतिगृहाणेदमयोध्यां श्वो गमिष्यसि॥
(यु० का० १२४। १७)

भरतं प्रति हनुमद्वचनम्—

तां गङ्गां पुनरासाद्य वसन्तं मुनिसंनिधौ।
अविघ्नं पुष्ययोगेन श्वो रामं द्रष्टुमर्हसि॥
(यु० काण्ड १२६। ५४)

(अर्थात् कल षष्ठी तिथि और पुष्य नक्षत्र हैं।)

६. सीतोवाच—

मम भर्ता महातेजा वयसा पञ्चविंशकः॥
अष्टादश हि वर्षाणि मम जन्मनि गण्यते।
उषित्वा द्वादश समा इक्ष्वाकूणां निवेशने।
भुञ्जाना मानुषान् भोगान् सर्वकामसमृद्धिनी॥
तत्र त्रयोदशे वर्षे राजामन्त्रयत प्रभुः।
अभिषेचयितुं रामं समेतो राजमन्त्रिभिः॥
(अर० का० ४७। १०-११, ४-५)

७. चैत्रः श्रीमानयं मासः पुण्यः पुष्पितकाननः।
यौवराज्याय रामस्य सर्वमेवोपकल्प्यताम्॥
(अयो० का० ३। ४)

८. उदिते विमले सूर्ये पुष्ये चाभ्यागतेऽहनि।
लग्ने कर्कटके प्राप्ते जन्म रामस्य च स्थिते॥
अभिषेकाय रामस्य द्विजेन्द्रैरुपकल्पितम्।
(अयो० का० १५। ३, ४)

वनवासके लिये प्रस्थान करना पड़ा । वनवास-समाप्तिके वर्ष अधिक तथा शुद्ध मिलाकर कुल ६० दिनका आश्विन मास था। इसलिये पाठकोंकी सुविधाके लिये इस लेखमें प्रारम्भके ३० दिनको प्रथम आश्विन और पीछेके ३० दिनमें द्वितीय आश्विनके नामसे कहा गया है ।

वर्षाऋतुके कुछ दिन पूर्व ज्येष्ठ शुक्लपञ्चमीको श्रीराम-हनुमान्-सुग्रीव-मिलन, दशमीको वालीका वध तथा द्वादशीको सुग्रीवका राज्याभिषेक हुआ था। उसके बाद वर्षाऋतु वितानेके लिये भगवान् श्रीराम लक्ष्मणजीके साथ प्रस्रवण (प्रवर्षण) गिरिकी गुफामें रहने लगे और उधर सुग्रीवजी किष्किन्धामें रहकर राज्यसुख भोगने लगे। वर्षाऋतु समाप्त हुई। शरद्ऋतुके चिह्न दिखायी पड़ने लगे । उस समय श्रीरामने लक्ष्मणजीको सुग्रीवके पास भेजकर यह संदेश पहुँचाया कि 'आपने वर्षा-ऋतुके पूर्व जो प्रतिज्ञा (सुग्रीवने यह प्रतिज्ञा की थी कि 'मैं नानाद्वीपवासी वानरोंको शीघ्र ही इकट्ठा करूँगा और उनको श्रीसीताजीके अन्वेषणार्थ भेजूँगा ।) की थी, उसे क्या भूल गये ?' लक्ष्मणजीके द्वारा इस संदेशको सुनकर सुग्रीवजी-ने कहा कि 'मैं नानाद्वीपोंके वानरोंको बुलानेके लिये बहुत-से दूत भेज चुका हूँ। अब वे शीघ्र ही यहाँ आ जानेवाले हैं । वे वानर बहुत बलिष्ठ तथा इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले हैं एवं श्रीरामके कार्यके लिये ही पैदा हुए हैं।' यह सुनकर लक्ष्मणजी प्रसन्न हुए और सुग्रीवजीको साथ लेकर श्रीरामजीके पास आये । सुग्रीवजीने अपना किया हुआ कार्य श्रीरामजीको भी सुनाया, जिससे श्रीरामजी संतुष्ट हुए । इतनेमें श्रीरामचन्द्रजीने बाहर देखा तो नानाद्वीप-वासी वानरगण आते हुए दिखायी पड़े । उन सबने समीप आकर श्रीरामजीको तथा अपने राजा सुग्रीवजीको प्रणाम किया और अपना कर्तव्य-कार्य पूछा । सुग्रीवजीने आये हुए वानरोंको अलग-अलग दलोंमें विभक्त करके उन्हें चारों दिशाओंमें श्रीसीताजीके अन्वेषणार्थ भेजा । विदा करते समय उन्होंने सब वानरोंसे कहा कि 'जो वानर एक मासके[11] भीतर सीताजीका पता लगाकर उसका समाचार मुझे नहीं सुनायेगा, वह मेरे हाथोंसे मारा जायगा ।' अङ्गद, नल, नील, जाम्बवन्त, हनुमान् आदि दक्षिण दिशामें भेजे गये । सीताजीको विश्वास दिलानेके लिये श्रीरामजीने अपनी अँगूठी[12] हनुमान्‌जीको दी । हनुमान्‌जी सुग्रीवके मन्त्री भी थे । जिस दिन वे लोग सीताजीकी खोजमें चले थे, वह शरद्-ऋतुके तथा प्रथम आश्विन मासके प्रारम्भका दिन था अर्थात् उस दिन प्रथम आश्विनके कृष्णपक्षकी प्रतिपदा थी । सीताके अन्वेषणार्थी अङ्गद-हनुमान् प्रभृति दक्षिण दिशामें चले गये । प्रथम आश्विन मास बीत गया । एक महीनेकी अवधि समाप्त हो गयी, किंतु सीताजीका पता नहीं लगा । तब अङ्गदजी चिन्तित होकर हनुमान्‌जीसे कहने लगे—'सुग्रीवजी मेरा वध अवश्य करेंगे । हम सभी सीताजीकी खोज लगानेमें विफल रह गये । अब मैं किष्किन्धामें जाकर सुग्रीवजीके हाथों मरनेके बदले यहाँ अन्न-जलका त्याग करके प्राण छोड़ दूँगा[13] ।'

---

९. चत्वारो वार्षिका मासा गता वर्षशतोपमाः ।
मम शोकाभितप्तस्य तथा सीतामपश्यतः ॥
(कि० का० ३० । ६४)

नोट—'पक्षा एव मासाः'—चार पक्षोंके वर्षाऋतुके दो महीनोंको ही यहाँ 'चातुर्मास्य'के नामसे कहा गया है । आश्विन तथा कार्तिकको भी चातुर्मास्यके अन्तर्गत माननेमें यह आपत्ति आती है कि आश्विन कृष्णके आरम्भमें अँगूठी देकर हनुमान् तथा अङ्गद भेजे गये थे और उसके पहले श्रीरामजीने लक्ष्मणजीसे यह कहा था कि 'वर्षाऋतुके चार मास पूरे हो चुके हैं, शरद्ऋतु आ गयी है, सीताजीकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न होना चाहिये ।' ऐसी दशामें भगवान्‌का उपर्युक्त वचन गलत हो जाता है । इसलिये श्रीरामजीकी युक्ति तथा अन्य शास्त्रकारोंकी भी सम्मतिके अनुसार वर्षाऋतुके दो महीनोंके चार पक्षोंको ही 'चातुर्मास्य' समझना चाहिये । इस विषयको समझनेके लिये वाल्मीकीय रामायणके किष्किन्धाकाण्डका ३०वाँ सर्ग देखिये ।

१०. पाण्डुरं गगनं दृष्ट्वा विमलं चन्द्रमण्डलम् ।
शारदीं रजनीं चैव दृष्ट्वा ज्योत्स्नानुलेपनाम् ॥
(कि० का० ३० । २)

११. अभिगम्य तु वैदेहीं निलयं रावणस्य च ।
मासे पूर्णे निवर्तध्वमुदयं प्राप्य पर्वतम् ॥
ऊर्ध्वं मासान्न वस्तव्यं वसन् वध्यो भवेन्मम ।
(कि० का० ४० । ६९-७०)

१२. ददौ तस्य ततः प्रीतः स्वनामाङ्कोपशोभितम् ।
अङ्गुलीयमभिज्ञानं राजपुत्र्याः परंतपः ॥
(कि० का० ४४ । १२)

१३. युवराजो महाप्राज्ञ अङ्गदो वाक्यमब्रवीत् ॥
....
मासः पूर्णो बिलस्थानां हरयः किं न बुध्यत ॥
वयमाश्वयुजे मासि कालसंख्याव्यवस्थिताः ।
प्रस्थिताः सोऽपि चातीतः किमतः कार्यमुत्तरम् ॥
(किष्किन्धा० ५३ । ७-९)

अङ्गदजीको इस प्रकार चिन्तित देखकर सब लोग निराश होकर बैठे थे कि सम्पाति नामका एक पक्षी दीख पड़ा। अङ्गदजीके पूछनेपर उसने सीताजीका ठीक-ठीक पता बताया। उसको सुनकर वानरलोग आपसमें कहने लगे कि 'सौ योजनके समुद्रको लाँघनेमें हम तो असमर्थ हैं; वायुपुत्र हनुमान्‌जी इस समुद्रको फाँदकर सीताजीका समाचार ला सकते हैं; इसलिये उन्हींको भेजा जाय।' जाम्बवान्‌जीने भी इस प्रस्तावको स्वीकार किया और उन्होंने सबकी ओरसे हनुमान्‌जीको समुद्र-पार जानेके लिये कहा। हनुमान्‌जी जाम्बवान्‌की आज्ञा पाकर उत्साहित हो गये और तत्काल आकाश-मार्गसे लङ्काकी ओर चल पड़े। लङ्कामें पहुँचकर उन्होंने रातों-रात[14] सीताजीका पता लगा लिया। उनके पास जाकर उन्हें श्रीरामजीका कुशल-समाचार सुनाया और उनको श्रीरामकी भेजी हुई अँगूठी दी। सीताजीने भी प्रसन्नमनसे अपनी चूड़ामणि उतारकर हनुमान्‌जीको दिया और कहा कि 'मेरा यह चूड़ामणि श्रीरामजीको दे देना तथा यहाँका सब समाचार भी सुनाना, जिससे दो महीनोंके भीतर-भीतर रावणका वध[15] हो जाय और मुझको श्रीरामजी यहाँसे ले जायँ।' यह ऊपर लिखा ही जा चुका है।

हनुमान्‌जीने इस प्रकार रात्रिमें ही सीताजीकी खोज कर ली और प्रातःकाल अशोकवाटिकाको उजाड़ दिया तथा कुछ राक्षसोंको भी मारा। पश्चात् रावणने उन्हें पकड़वा लिया और उनकी पूँछमें आग लगवा दी। हनुमान्‌जीने अपनी पूँछकी उस आगको लङ्कामें फैलाकर उसका बहुत-सा हिस्सा जला दिया। तत्पश्चात् वे स्वयं समुद्रमें कूद पड़े और अपनी पूँछकी आग बुझाते हुए बहुत प्रसन्न हुए। पश्चात् वे शीघ्र ही आकाश-मार्गसे चल पड़े और तुरंत जाम्बवान् अङ्गद आदिके पास आ पहुँचे। सभी वानर-भालू हनुमान्‌जी द्वारा सीताजीका पता लगानेका समाचार पाकर बहुत प्रसन्न हुए। अनन्तर हनुमान्‌जी सबके साथ किष्किन्धाके मधुवनमें आ पहुँचे। वहाँ सबने यथेष्ट मधुपान किया। पश्चात् हनुमान् समेत अङ्गदजी सुग्रीवसे आकर मिले। सुग्रीवजी उस समय प्रवर्षण पर्वतपर श्रीरामजीके पास ही बैठे थे। हनुमान्‌जीने सीताजीका समाचार सुग्रीवको तथा श्रीरामजीको सुनाया और चूड़ामणि दे दिया। श्रीरामजी इसपर अत्यन्त संतुष्ट हुए। उन्होंने हनुमान्‌जीको प्रगाढ़ आलिङ्गन दिया और कहा कि 'मैं तुम्हारे इस उपकारसे कभी उऋण नहीं हो सकता।' उस आनन्ददायक समाचारको सुनकर सभी रामानुयायी आनन्द-समुद्रमें मग्न हो गये। पश्चात् श्रीरामचन्द्रजीने सुग्रीवसे कहा, "इस समय मध्याह्नका 'विजय' मुहूर्त है। आज उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र है और कल हस्त नक्षत्र है। इसलिये आज ही इस शुभ मुहूर्तमें हमलोगोंको सम्पूर्ण वानरसेनाके साथ विजययात्राके लिये प्रस्थान कर देना चाहिये।"

श्रीरामचन्द्रजीकी इस आज्ञाको शिरोधार्य कर सुग्रीव समेत सभी वानरगण दक्षिणसमुद्रकी ओर (सेतुबन्ध रामेश्वरकी ओर) चल पड़े।[16] श्रीरामचन्द्रजी हनुमान्‌जीके कंधेपर और लक्ष्मणजी अङ्गदजीके कंधेपर बैठे तथा आकाश-मार्गसे शीघ्र ही रामेश्वर जा पहुँचे। शेष वानर-सेना भी दिन-रात पैदल चलकर यथासमय रामेश्वर पहुँच

अङ्गदके इस वचनसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हनुमान्‌जीको प्रथम आश्विन कृष्णके प्रारम्भमें ही अँगूठी दी गयी थी।

१४. सूर्ये चास्तं गते रात्रौ देहं संक्षिप्य मारुतिः।
वृषदंशकमात्रोऽथ बभूवाद्भुतदर्शनः॥
चन्द्रोऽपि साचिव्यमिवास्य कुर्वं-
स्तारागणैर्मध्यगतो विराजन्।
ज्योत्स्नावितानेन वितत्य लोका-
नुत्तिष्ठतेऽनेकसहस्ररश्मिः॥
(सु० का० २ । ४९, ५७)

सूर्यास्त होनेके बाद थोड़ी ही देरमें पूरा चन्द्रमा (अनेकसहस्ररश्मिः) निकला था, इससे मालूम होता है कि वह तिथि द्वितीय आश्विन कृष्ण-द्वितीयाके लगभग थी।

१५. वर्तते दशमो मासो द्वौ तु शेषौ प्लवंगम।
रावणेन नृशंसेन समयो यः कृतो मम॥
यदि रामो दशग्रीवमिह हत्वा सराक्षसम्।
मामितो गृह्य गच्छेत तत्तस्य सदृशं भवेत्॥
(सु० का० ३७ । ८, ६४)

१६. अस्मिन् मुहूर्ते सुग्रीव प्रयाणमभिरोचय।
युक्तो मुहूर्ते विजये प्राप्तो मध्यं दिवाकरः॥
उत्तराफाल्गुनी ह्यद्य श्वस्तु हस्तेन योक्ष्यते।
अभिप्रयाम सुग्रीव सर्वानीकसमावृताः॥
ततो वानरराजेन लक्ष्मणेन च पूजितः।
जगाम रामो धर्मात्मा ससैन्यो दक्षिणां दिशम्॥
(यु० का० ४ । ३, ५, २३)

गयी। कोई-कोई अन्य प्रमुख वानर भी आकाश-मार्गसे पहुँचे। तात्पर्य यह कि सारी वानर-सेना रामेश्वरमें श्रीरामचन्द्रजीके निकट आकर इकट्ठी हो गयी।

पहले लिखा जा चुका है कि जब प्रथम आश्विन मास समाप्त हो गया और द्वितीय आश्विन मासका कृष्णपक्ष आरम्भ हुआ, तब एक महीना बीत जानेके कारण अङ्गदजी चिन्ता करने लगे थे। उन्हें यह चिन्ता प्रायः द्वितीय आश्विन कृष्ण प्रतिपदाको हुई। उस दिन रेवती नक्षत्र रहा होगा। उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र रेवती नक्षत्रसे १३ वें दिन पड़ता है, यह प्रायः नियम-सा है। और इस नियमसे यह सिद्ध होता है कि श्रीरामचन्द्रजीको चूड़ामणिका दर्शन तथा उनके आज्ञानुसार युद्धका प्रस्थान द्वितीय आश्विन कृष्ण १३ को हुआ। इन तेरह दिनोंके भीतर ही किसी दिन हनुमान्‌जीको लङ्कामें श्रीसीताजीका दर्शन प्राप्त हुआ था। मेरे विचारसे द्वितीय आश्विन कृष्णपक्षकी द्वितीयाके लगभग किसी रात्रिमें हनुमान्‌जीने सीताजीका दर्शन किया था। पाठकगण चाहें तो किसी भी वर्षके पञ्चाङ्गको देखकर इन तिथि-मास-नक्षत्रोंकी तुलना कर सकते हैं। तिथि-नक्षत्रोंकी घटिकाओंकी घटा-बढ़ीसे कदाचित् एक-दो दिनका अन्तर पड़ सकता है, अधिक नहीं। उस दिन सूर्यास्तके समय हनुमान्‌जी सूक्ष्मरूप धारणकर लङ्कामें घूम रहे थे और उसी समय आकाशमें चन्द्रमा भी निकला था। बादमें हनुमान्‌जीने मध्यरात्रिके समय रावणके अन्तःपुरमें प्रवेश किया था।[१७] ये बातें द्वितीयाके आस-पास ही सम्भव हो सकती हैं।

जिस दिन श्रीरामचन्द्रजी दक्षिण-समुद्रके तटपर पहुँचे, उसी दिन उनका दर्शन करनेके लिये विभीषण तथा रावणका दूत शुक उनके पास पहुँचे थे। श्रीरामचन्द्रजीने उसी समय विभीषणको राज्यतिलक दिया और रावणदूत शुकको बंदी किया। तत्पश्चात् श्रीरामजीने शिवलिङ्ग (रामेश्वर)की स्थापना तथा पूजा की और समुद्रका प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त करनेके लिये तीन दिनतक मौन-व्रत रक्खा।[१८] जब समुद्रने तीन दिनमें दर्शन नहीं दिया, तब उन्होंने क्रोध प्रदर्शित समुद्रशोषणके लिये ब्रह्मास्त्र छोड़नेका विचार किया। उस समय समुद्रने भयभीत होकर श्रीरामचन्द्रजीको प्रत्यक्ष दर्शन दिया, उनकी पूजा की और कहा—'भगवन्! नल नामक वानरके द्वारा सेतु बँधवाया जाय। मैं उसे धारण करूँगा।' समुद्रके इस कथनके अनुसार नलने अन्य वानरोंके साथ पाँच दिनमें सौ योजन लंबा सेतु तैयार कर दिया।[१९] उस सेतुपर चढ़कर सभी वानर शीघ्र ही लङ्काके सुवेल पर्वतपर पहुँच गये। श्रीराम-लक्ष्मण क्रमशः हनुमान्-अङ्गदके कंधोंपर बैठकर आकाशमार्गसे वहाँ पहुँचे। जिस दिन श्रीरामजी सुवेल पर्वतपर पहुँचे, उस दिन द्वितीय आश्विनकी पौर्णमासी थी, अर्थात् प्रस्थानके दिनसे १७वें दिन श्रीरामजी सेनासमेत सुवेल पर्वतपर पहुँचे।[२०] वहाँ पहुँचते ही उन्होंने शुक दूतको बन्धनमुक्त कर दिया और उसी दिनसे वानरों तथा राक्षसोंका युद्ध प्रारम्भ हो गया। राम-

---

१७. परिवृत्तेऽर्धरात्रे तु पाननिद्रावशं गतम्।
क्रीडित्वोपरतं रात्रौ प्रसुप्तं पश्यतस्तदा॥
(सु० का० ९।३४)

१८. स त्रिरात्रोषितस्तत्र नयज्ञो धर्मवत्सलः।
उपासत तदा रामः सागरं सरितां पतिम्॥
(यु० का० २१।११)

१९. कृतानि प्रथमेनाह्ना योजनानि चतुर्दश।
... ...
द्वितीयेन तथैवाह्ना योजनानि तु विंशतिः॥
... ...
अह्ना तृतीयेन तथा योजनानि तु सागरे।
... ...
चतुर्थेन तथा चाह्ना द्वाविंशतिरथापि वा॥
पञ्चमेन तथा चाह्ना प्लवगैः क्षिप्रकारिभिः।
योजनानि त्रयोविंशत्सुवेलमधिकृत्य वै॥
(यु० का० २२।६८—७२)

क्षिप्रमचैव दुर्धर्षां पुरीं रावणपालिताम्।
अभियाम जवेनैव सर्वैर्हरिभिरावृताः॥
(यु० का० २३।१३)

२०. अध्यारोहन्त शतशः सुवेलं यत्र राघवः।
ते त्वदीर्घेण कालेन गिरिमारुह्य सर्वतः॥
ददृशुः शिखरे तस्य विषक्तामिव खे पुरीम्।
... ...
ततोऽस्तमगमत् सूर्यः संध्यया प्रतिरञ्जितः।
पूर्णचन्द्रप्रदीप्ता च क्षपा समतिवर्तत॥
(यु० का० ३८।१४, १५, १९)

तां रात्रिमुषितास्तत्र सुवेले हरियूथपाः।
लङ्कायां ददृशुर्वीरा वनान्युपवनानि च॥
(यु० का० ३९।१)

प्रस्थानके १२ वें दिनसे (द्वितीय आश्विन शुक्ला दशमी—विजयादशमीसे) पाँच दिनमें सेतु-बन्धका कार्य पूरा हुआ और उन १२ दिनोंमें सेनाका किष्किन्धासे रामेश्वर पहुँचना, रामेश्वरकी स्थापना, तीन दिन मौन-व्रतसे रहना आदि कार्य हुए।

जिस रात्रिको लक्ष्मणजीने निकुम्भिला नामक स्थानपर इन्द्रजित् (मेघनाद) का वध किया, उसी रात्रिमें रावण पुत्र-शोकसे पीड़ित होकर अशोकवाटिकामें गया और खड्गसे सीताजीका वध करनेको उद्यत हुआ; परंतु सुपार्श्व नामक मन्त्रीने नाना युक्तियोंसे रावणको समझाकर उसे सीतावधसे निवृत्त किया। उसने कहा कि 'आज कृष्णपक्षकी चतुर्दशी है। कल अमावस्याके दिन आप रामसे युद्ध करें।'[२१] सुपार्श्वकी बतायी हुई चतुर्दशी कार्तिककी कृष्णचतुर्दशी थी। राम-प्रस्थानके दिनसे यह ३१ वाँ दिन था। यहाँतक १५ दिनका युद्ध हुआ। इन दिनोंमें बहुत-से प्रमुख-प्रमुख राक्षस कुम्भकर्ण और मेघनादके साथ मारे गये। अब केवल रावण ही मुख्य योद्धा बच गया था। उसका युद्ध अमावस्यासे शुरू हुआ। यह कभी युद्धमें आता था और कभी लङ्कामें पलायन कर जाता था; इस प्रकार कई दिनोंतक उसने युद्ध किया। युद्धभूमि लङ्का-नगरीसे कुछ दूर थी।

पहले लिखा जा चुका है कि मार्गशीर्ष कृष्णा ६ के दिन पुष्य नक्षत्रमें श्रीरामचन्द्रजी सीतासमेत पुष्पक विमानद्वारा अयोध्या पहुँच गये थे। उसके पहले दिन पञ्चमी तिथिको प्रातःकाल वे लङ्कासे चले थे और उसी दिन दोपहरको भरद्वाज मुनिके आश्रममें पहुँचकर उन्होंने मुनियोंकी संनिधिमें निवास किया और हनुमान्‌के द्वारा अयोध्याके निकटवर्ती नन्दिग्राममें भरतके पास समाचार पहुँचाया। उसके पहले दिन चतुर्थीको जब श्रीरामचन्द्रजी लङ्कासे चलनेके लिये तैयार हुए, तब विभीषणने निवेदन किया कि कल दिनमें ही पुष्पक विमानद्वारा प्रस्थान करना अच्छा होगा।[२२] श्रीरामचन्द्रजीने इस प्रार्थनाको स्वीकार करके चतुर्थीकी रातको लङ्कामें ही निवास किया। यह मार्गशीर्ष कृष्णा चतुर्थी तिथि किष्किन्धामें युद्धके लिये प्रस्थानके दिनसे ५१वाँ दिन थी। इस प्रकार सीताजीकी शपथपूर्वक की हुई यह सत्य प्रतिज्ञा कि दो महीनेके अंदर ही रावणका वध तथा श्रीरामजीकी प्राप्ति होनी चाहिये, पूर्ण हुई। मेघनादवधके दिनसे मार्गशीर्ष कृष्णा चतुर्थीतक २१ दिनमें रावणका वध, अग्निद्वारा सीताकी शुद्धि, दशरथसे वार्तालाप, ब्रह्मा-शंकर-इन्द्र आदि देवताओंद्वारा भगवान् श्रीरामकी स्तुति, रावणका दाह-संस्कार, विभीषणका राज्याभिषेक, वानरोंका विसर्जन आदि कार्य हुए।

यद्यपि एक वर्षके अंदर वैशाख शुक्ला षष्ठी, ज्येष्ठ शुक्ला षष्ठी, कार्तिक कृष्णा षष्ठी, मार्गशीर्ष कृष्णा षष्ठी—इन चारों तिथियोंमें पुष्य नक्षत्रका योग होना सम्भव है, तथापि मार्गशीर्ष कृष्णा षष्ठीको छोड़कर इन मासोंकी षष्ठी तिथियोंमें पुष्य-नक्षत्रका योग इसलिये नहीं मानना चाहिये कि उनमें रामवनवासकी समाप्तिका दिन किसी प्रकार सिद्ध नहीं होता। वनवासकी समाप्ति जाननेकी रीति ऊपर लिखी जा चुकी है।

मार्गशीर्ष कृष्णा सप्तमीके दिन भी कुछ घटिकाओंतक पुष्य नक्षत्र अवश्य था, इसीलिये उस दिन प्रातःकाल महर्षि वसिष्ठने सुग्रीव, हनुमान्, अङ्गद आदिके द्वारा चारों समुद्रोंका जल मँगवाया था[२३] और उसी दिन रामराज्याभिषेक भी किया था। वाल्मीकिरामायणकी रामाभिरामी टीकामें भी सप्तमीको ही रामराज्याभिषेक लिखा गया है।[२४] यद्यपि टीकाकारोंने अनेक पुराणोंके आधारपर रावण-वध तथा रामराज्याभिषेककी भिन्न-भिन्न तिथियाँ और मास लिखे हैं, तथापि वे सब तिथि-मास कल्पभेदसे ठीक हैं—इसमें कोई संदेह नहीं है। चाहे जिस कल्पके रामावतारका चरित्र हो, उसका पठन-पाठन करनेसे चित्त-शुद्धि होकर भगवत्प्राप्ति हो सकती है। हाँ, मैंने केवल महर्षि वाल्मीकिके मतानुसार ही रावण-वध,

---

२१. अभ्युत्थानं त्वमद्यैव कृष्णपक्षचतुर्दशी।
कृत्वा निर्याह्यमावास्यां विजयाय बलैर्वृतः॥
(यु० का० ९२। ६६)

२२. तं विना कैकयीपुत्रं भरतं धर्मचारिणम्।
न मे स्नानं बहु मतं वस्त्राण्याभरणानि च॥

एवमुक्तस्तु काकुत्स्थं प्रत्युवाच विभीषणः।
अह्ना त्वां प्रापयिष्यामि तां पुरीं पार्थिवात्मज॥
(यु० का० १२१। ६, ८)

२३. तथा प्रत्यूषसमये चतुर्णां सागराम्भसाम्।
पूर्णैर्घटैः प्रतीक्षध्वं तथा कुरुत वानराः॥
—इति सुग्रीवं प्रति भरतवचनम् (यु० का० १२८। ५०)

२४. नन्दिग्रामे तु षष्ठ्यां वै भरतेन समागतः।
सप्तम्यामभिषिक्तोऽसौ अयोध्यायां रघूत्तमः॥
(यु० का० टीका ११०, श्लोक ३४

युद्धारम्भ एवं युद्धसमाप्ति और श्रीरामचन्द्रजीके अयोध्यापुरीमें प्रवेश तथा भरत-सम्मिलनका समय दिखलानेकी चेष्टा की है।

युद्ध-समाप्तिके अनन्तर श्रीरामचन्द्रजीके साथ लङ्कासे पुष्पक विमानद्वारा आयी हुई सारी भक्तमण्डली अर्थात् सुग्रीव, अङ्गद, हनुमान्, नल, नील, जाम्बवन्त, उनकी स्त्रियाँ तथा विभीषण आदि अयोध्यामें रामराज्याभिषेक होनेके बाद दो महीनोंतक रहे।[२५] दूसरा महीना शिशिरऋतु (माघ) का था। तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजीने सुग्रीव आदि वानरोंको तथा विभीषण आदि राक्षसोंको अपने-अपने देशमें जाकर राज्य करनेके लिये कहा। भगवान् श्रीरामकी इस आज्ञाके अनुसार सुग्रीव और विभीषण आदिकी मण्डली उनका चिन्तन करती हुई अपने-अपने स्थानको चली गयी।[२६] श्रीरामचन्द्रजीने ११ हजार वर्षतक राज्य किया। श्रीरामजीके राज्यमें मनुष्योंकी पूर्णायु एक हजार वर्षकी थी। श्रीरामचन्द्रजीका वर प्राप्त करके विभीषण तथा हनुमान्जी कल्पान्तजीवी हुए। अयोध्यावासी सभी जीव ब्रह्मलोकसे भी ऊपर सान्तानिक नामक लोकको प्राप्त हुए। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी महाविष्णु हुए। श्रीसीताजी लक्ष्मी बन गयीं। श्रीलक्ष्मणजी शेष बन गये और श्रीभरत तथा श्रीशत्रुघ्न शङ्ख-चक्र बन गये।

पूरे लेखका सारांश यह है कि श्रीराम-वनवास-समाप्तिके वर्ष प्रथम आश्विनके कृष्णपक्षका प्रारम्भ होते ही हनुमान्, अङ्गद आदि वानर श्रीरामजीसे अँगूठी प्राप्त करके श्रीसीताजीके अन्वेषणार्थ निकले थे। प्रथम आश्विन मास समाप्त हो जानेके बाद द्वितीय आश्विन मासके कृष्णपक्षकी द्वितीयाके लगभग हनुमान्जीने लङ्कामें श्रीसीताजीका दर्शन प्राप्त किया। द्वितीय आश्विन मासकी कृष्णा त्रयोदशी एवं उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रके दिन श्रीरामचन्द्रजीने किष्किन्धासे सैन्यसमेत युद्धके लिये प्रस्थान किया। द्वितीय आश्विन शुक्ला दशमीसे प्रारम्भकर कुल ५ दिनमें वानरोंने सेतु तैयार किया, जिसके द्वारा सारी सेना शीघ्र ही लङ्कामें पहुँच गयी। द्वितीय आश्विन शुक्ला पूर्णिमाकी शामको श्रीरामचन्द्रजीने सैन्यसमेत सुवेलपर्वतपर निवास किया और उसी दिनसे युद्धारम्भ हो गया। सबसे पहले प्रधान सेनानायक सुग्रीवजी रावणके स्थानपर जाकर उससे लड़े। कार्तिक कृष्णा चतुर्दशीको इन्द्रजित् (मेघनाद) का वध हुआ। कार्तिक कृष्णा अमावस्यासे रावण तथा श्रीरामजीकी लड़ाई शुरू हुई। मार्गशीर्ष कृष्णा द्वितीयाके दिन श्रीराम-रावण-युद्धकी समाप्ति हुई।[२७] इन ३२ दिनोंके अंदर रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद-प्रभृति असंख्य राक्षस मारे गये। बचे हुए राक्षसोंका राज्य

---

२५. एवं तेषां निवसतां मासः साग्रो ययौ तदा।
... ...
रामोऽपि रेमे तैः सार्धं वानरैः कामरूपिभिः।
... ...
एवं तेषां ययौ मासो द्वितीयः शिशिरः सुखम्।
वानराणां प्रहृष्टानां राक्षसानां च सर्वशः॥
(उ० का० ३९। २७—२९)
कृतप्रसादास्तेनैवं राघवेण महात्मना।
जग्मुः स्वं स्वं गृहं सर्वे देही देहमिव त्यजन्॥
(उ० का० ४०। ३०)

२६. सुग्रीव आदि दो महीनोंतक अयोध्यामें रहकर शिशिरऋतुमें विदा हुए; इससे भी यही सिद्ध होता है कि मार्गशीर्षमें ही श्रीरामजीका राज्याभिषेक हुआ था। राज्याभिषेकके दिनसे ५३वें दिन शिशिर-ऋतु (माघ) का प्रारम्भ हुआ था।
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च।
भ्रातृभिः सहितः श्रीमान् रामो राज्यमकारयत्॥
आसन् वर्षसहस्राणि तथा पुत्रसहस्रिणः।
निरामया विशोकाश्च रामे राज्यं प्रशासति॥
(यु० का० १२८। १०६,१०१)
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च।
रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति॥
(बालकाण्ड १। ९७)

२७. अष्टादशदिने रामो द्वैरथे रावणं वधीत्।
(यु० का० टी० ११० श्लोक० ३४)

यह रामाभिरामी टीकाका मत है। 'द्वैरथ युद्ध' उसे कहते हैं, जिसमें केवल दो ही रथोंसे आपसमें युद्ध किया जाय—'द्वाभ्यां रथाभ्यां क्रियत इति द्वैरथम्।' इस मतके अनुसार केवल १८ दिनोंतक राम-रावणका युद्ध होता रहा। यह मत भी किसी-न-किसी कल्पके रामावतारसे सम्बन्ध रखनेके कारण ठीक ही है। यदि हम इसका अवलम्बन करें, तब भी यही निश्चय होता है कि कार्तिक कृष्णा अमावस्यासे मार्गशीर्ष कृष्णा द्वितीयातक राम-रावण-युद्ध होता रहा और उसी दिन रावणका वध हो जानेसे युद्धकी समाप्ति हो गयी। मेघनाद-वधके दिनसे १९वें दिन रावणका वध हुआ। रावण-वधके बाद उसका दाह-संस्कार हुआ तथा विभीषणका राज्याभिषेक हुआ। पश्चात् एक-दो दिनमें श्रीरामचन्द्रजीने पुष्पक विमानद्वारा अयोध्याकी ओर प्रस्थान किया और मार्गमें पञ्चमीके दिन प्रयागमें भरद्वाजमुनिके आश्रममें निवास किया, इत्यादि।

विभीषणको सौंपा गया। मार्गशीर्ष कृष्णा पञ्चमीके दिन पुष्पक विमानके द्वारा लङ्कासे चलकर श्रीरामचन्द्रजी सीता, लक्ष्मण, सुग्रीव, अङ्गद, हनुमान्, विभीषण आदिके साथ दोपहरको भरद्वाजमुनिके आश्रम प्रयागमें पहुँचे और उस दिन रात्रिमें भी वहीं निवास किया। मार्गशीर्ष कृष्णा षष्ठी, पुष्य नक्षत्रके दिन पूर्वाह्णकालमें अयोध्याके नन्दिग्राममें जाकर श्रीरामचन्द्रजी सबके साथ श्रीभरतजीसे मिले। मार्गशीर्ष कृष्णा सप्तमीको कुलगुरु महर्षि वसिष्ठजीने अयोध्यामें श्रीरामचन्द्रजीका राज्याभिषेक किया। उसके बाद दो मासपर्यन्त विभीषण तथा सुग्रीव आदिकी मण्डली अयोध्यामें श्रीरामजीकी संनिधिमें रही। अनन्तर शिशिर-ऋतुमें श्रीरामचन्द्रजीने आज्ञा देकर विभीषण, सुग्रीव आदि सारी मण्डलीको विदा किया। उसके पश्चात् ११ हजार वर्षोंतक श्रीरामचन्द्रजीने राज्य किया और तदनन्तर अपने परमधामकी यात्रा की तथा अयोध्यावासी लोग 'सांतानिक' नामक लोकमें पहुँचाये गये।

उपसंहार

वनवास-समाप्तिके वर्ष दोनों आश्विन मासके ६० दिन हुए। इनमें पहलेके १५ दिन तथा अन्तिम १५ दिन शुद्ध मासके और बीचके ३० दिन मलमासके होने चाहिये। अर्थात् ऐसे समझना चाहिये कि प्रथम आश्विन मासके आदिके १५ दिन शुद्धपक्षके तथा बाकी १५ दिन मलपक्षके थे और द्वितीय आश्विन मासके आदिके १५ दिन मलपक्षके तथा शेष १५ दिन शुद्धपक्षके थे। इस प्रकार भाद्रपदकी पूर्णिमासे ३१वें दिनपर्यन्त प्रथम आश्विन मास था और ३१वें दिनसे ६१वें दिनतक द्वितीय आश्विन मास था। ६१वें दिनसे ९१वें दिनतक कार्तिक था और ९८वें दिन मार्गशीर्ष कृष्णा सप्तमी तिथि थी, जिस दिन रामराज्याभिषेक हुआ। भाद्रपदकी पूर्णिमाको वर्षा-ऋतुकी समाप्ति हुई और शरद्-ऋतुका आरम्भ हुआ। इसी पूर्णिमाके दूसरे दिन श्रीहनुमान्जी-प्रभृति अँगूठीके साथ दक्षिण-दिशाकी ओर भेजे गये थे। ३२वें दिन अङ्गदने चिन्ता की थी। ३३वें दिन लङ्कामें रात्रिके समय हनुमान्जीने सीताजीका दर्शन किया। ४४वें दिन श्रीरामजीने किष्किन्धासे ससैन्य प्रस्थान किया। ५६वें दिन विजयादशमीको सेतुबन्धनका कार्य आरम्भ हुआ। ६१वें दिन पूर्णिमाको श्रीरामजी सेनासमेत सुवेल पर्वतपर पहुँचे। ७५वें दिन मेघनाद मारा गया। ७६वें दिनसे राम-रावणका घोर युद्ध प्रारम्भ हुआ। ९३वें दिन रावणका वध हुआ। ९६वें दिन श्रीरामचन्द्रजी भरद्वाजके आश्रममें (प्रयाग) पहुँचे। ९८वें दिन मार्गशीर्ष कृष्णा सप्तमीको रामराज्याभिषेक हुआ। अस्तु—

इन मुख्य-मुख्य बातोंको ध्यानमें रखना चाहिये—
१—वर्षा-ऋतुकी समाप्ति तथा शरद्-ऋतुके प्रारम्भमें हनुमान्जी-प्रभृतिको अँगूठी देकर सीताजीके अन्वेषणार्थ भेजा गया था। २—लङ्कामें हनुमान्जीके पहुँचनेपर सीताजीने यह शपथपूर्वक कहा था कि यदि दो महीनोंमें राम-प्राप्ति न होगी तो मैं प्राण-त्याग कर दूँगी। ३—उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रको रामने प्रस्थान किया। ४—पूर्णिमाको लङ्काके सुवेल पर्वतपर श्रीरामका सेनासहित निवास हुआ। ५—कृष्णपक्षकी अमावास्याको रावण युद्ध-भूमिपर उतरा था। ६—पुष्य नक्षत्रयुक्त षष्ठी तिथिको श्रीरामजी भरतजीसे मिले तथा उसी दिन वनवास-विधिके अनुसार वनवास पूरा हुआ। कुल १३ वर्ष ८ मासतक वनवास रहा। ७—पुष्य नक्षत्रयुक्त षष्ठी तिथिके २ महीने बाद शिशिर-ऋतु आयी और उसी ऋतुमें सुग्रीव तथा विभीषणादि अयोध्यासे विदा हुए।

कैसे अपनाओगे ?

औगुन अनंत खर-दूषन लौं दोषवंत, तुच्छ त्रिसिरा लौं जाको एक हू न जस है।
कहै 'पदमाकर' कबंधलौं मदंध, महापापी हौं मरीच लौं, न दाया को दरस है॥
मंथरा लौं मंथर, कुपंथी पंथ-पाहन लौं, बालि हू लौं त्रिषई, न जान्यौं और रस है।
ब्याध हू लौं बधिक, बिराध, लौं बिरोधी राम, एते पै न तारौ तौ हमारौ कहा बस है॥
ब्याध हू तें बिहद, असाधु हौं अजामिल तें, ग्राह तें गुनाही, कहौ तिनमें गनाओगे।
स्यौरी हौं न सुद्र हौं न केवट कहूँ को त्यौं न, गौतमी तिया हौं जापै पग धरि आओगे॥
राम सों कहत 'पदमाकर' पुकारि, तुम मेरे महापापन को पार हू न पाओगे।
सीता-सी सतीकों तज्यो झूठोई कलंक सुनि, साँचोई कलंकी ताहि कैसे अपनाओगे॥

(पद्माकर)

रामकथाके आद्य गायक

(लेखक—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे)

रामभक्त भगवान् शंकर और माता पार्वती

कर्पूरगौर भगवान् शंकर एवं नीलोत्पल-श्याम श्रीराममें भेद नहीं है। दोनों ही सदा अभिन्न हैं। दोनों सदा एक दूसरेके आराध्य और आराधक हैं। कहीं अहिभूषण सीतापतिकी आराधना करते हैं तो कहीं जगदाधार श्रीराम गङ्गाधरकी पूजामें तल्लीन रहते हैं। श्रीरामको संतुष्ट करनेके लिये, उनकी कृपाप्राप्तिके लिये त्रिशूलधारीकी कृपा आवश्यक है। भगवान् विभूति-भूषणसे द्रोह करनेवालेसे नव-जलधर-सुन्दर श्रीराम कभी तुष्ट नहीं होते। उन्होंने अपने मुखारविन्दसे स्वयं कहा है—

'सिव द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा॥'

(मानस ६। १। ३½)

देवर्षि नारदने क्षीराब्धिशायी प्रभुको शाप दे दिया, पर मोह-निवारण होनेपर जब वे पश्चात्ताप करने लगे, तब प्रभुने उन्हें शान्ति प्राप्त करनेका मार्ग बताते हुए कहा—

जपहु जाइ संकर सत नामा। होइहि हृदयँ तुरत बिश्रामा॥
कोउ नहिं सिव समान प्रिय मोरें। असि परतीति तजहु जनि भोरें॥
जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव मुनि भगति हमारी॥

(मानस १। १३७। ३-३½)

'जाकर शंकरजीके शतनामका जप करो इससे हृदयमें तुरंत शान्ति मिलेगी। शिवजीके समान मुझे कोई प्रिय नहीं है, इस विश्वासको भूलकर भी न छोड़ना। हे मुनि! पुरारि (शिवजी) जिसपर कृपा नहीं करते, वह मेरी भक्ति नहीं पाता।'

समुद्र-पार जानेके पूर्व प्रभु श्रीरामने भगवान् शंकरकी स्थापना कर उनकी सविधि पूजा की और बोले 'सिव समान प्रिय मोहि न दूजा॥' (मानस ६। १। ३) और श्रीगङ्गाधरके तो दशरथतनय श्रीराम प्राण ही हैं। वे जब-जब प्रभु श्रीराम अवतरित होते हैं, तब-तब वे प्रभु श्रीरामकी मधुर, मनोहर और मङ्गलमयी लीलाके दर्शनार्थ धरतीपर आते रहते हैं और उनकी अलौकिक लीलाओंको देख-देखकर मुग्ध होते हैं। प्रभुका 'राम' नाम तो उन्हें प्राणाधिक प्रिय है। तभी तो—

ब्रह्म राम तें नामु बड़ बरदायक बरदानि।
रामचरित सत कोटि महँ, लिय महेस जियँ जानि॥

(मानस १। २५)

"(राम-) नाम (निर्गुण) ब्रह्म और (सगुण) राम दोनोंसे बड़ा है। यह वर देनेवालोंको भी वर देनेवाला है। श्रीशिवजीने अपने हृदयमें यह जानकर ही सौ करोड़ रामचरित्रमेंसे इस 'राम' नामको (साररूपसे चुनकर) ग्रहण किया है।"

सच तो यह है कि 'राम'-के नामका महत्त्व पार्वतीवल्लभ शंकरजी ही अच्छी तरह जानते हैं—

'नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फलु दीन्ह अमी को॥'

(मानस १। १८। ४)

'नामके प्रभावको श्रीशिवजी भलीभाँति जानते हैं, जिस (प्रभाव)-के कारण कालकूट जहरने उन्हें अमृतका फल दिया।'

भगवान् शंकरने अपना अनुभव बताते हुए माता पार्वतीसे कहा था—

'उमा कहउँ मैं अनुभव अपना। सत हरि भजनु जगत सब सपना॥'

(मानस ३। ३८। २½)

श्रीशंकरजी द्वादश भागवताचार्योंमें प्रमुख एवं भगवान् श्रीरामके भक्त और स्वामी दोनों हैं। अपने अविमुक्तक्षेत्र वाराणसीमें प्राण-परित्याग करनेवाले प्रत्येक प्राणीको अपने प्रभु श्रीरामके 'राम'—इस तारकमन्त्रका उपदेश प्रदानकर उसे सदाके लिये जन्म-जरा-मरणके कष्टकर बन्धनसे मुक्त कर देते हैं।

पतिव्रताशिरोमणि माता पार्वती भी अपने पतिदेव भगवान् शंकरकी ही भाँति भगवान् श्रीरामकी बड़ी ही भक्त हैं। भगवती सीताने इन्हींकी आराधनासे भगवान् श्रीरामको पतिके रूपमें प्राप्त किया था। रामचरितमानसकी मङ्गलमयी कथा इन्हींकी दी हुई है। भगवान् शंकरने योग्यतम पात्र समझकर सम्पूर्ण रामचरित्र अत्यन्त विस्तारपूर्वक प्रेम एवं आनन्दसे पुलकित होकर सर्वप्रथम इन्हें ही सुनाया था—

'रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा॥'
(मानस १। ३४। ५½)

राम-गुन-गायक श्रीनारद

बंदौं श्रीनारद मुनिनायक। 'करतल बीन राम-गुन-गायक॥'
—भक्तमा

श्रीभगवान्‌के मन एवं भक्तिके एक प्रधान आचार्य श्रीनारदजी पूर्वजन्ममें दासीपुत्र थे। महात्माओंकी पत्तलमें बची जूठन खाते रहनेसे आप निष्पाप हो गये। इनकी पाँच वर्षकी आयुमें ही सर्पदंशसे इनकी माताका शरीरान्त हो गया। इसे भगवदनुग्रह मानकर नारदजी हिमालयकी ओर चले गये और वहाँ एक पीपल-वृक्षके नीचे बैठकर ध्यान करने लगे। ध्यान जमा नहीं, पर एक क्षणके लिये प्रभुका दर्शन हो गया। पुनः दर्शन न होनेपर आप व्याकुल हो गये।

'अब अगले जन्ममें दर्शन होंगे'—आकाशवाणी सुनकर आप मृत्युकी प्रतीक्षा करने लगे। उक्त शरीरके नष्ट होनेपर मरीचि आदि ऋषियोंके साथ आपकी उत्पत्ति ब्रह्माके मनसे हुई। तबसे आप संन्यासाश्रमोचित जीवन बिताते, वीणापर प्रभुका नाम-गुणगान करते हुए त्रैलोक्यमें विचरण किया करते हैं। श्रीनारदजी अत्यन्त सत्यवादी हैं। वे सुर-असुर ही नहीं, जीवमात्रके परम कल्याणके लिये तत्पर रहते हैं। प्रभु-पथपर चलनेवाले सत्पुरुषोंका आप कृपापूर्वक मार्ग-दर्शन कर सहयोग-प्रदान किया करते हैं। एक कल्पमें श्रीरामके अवतारके निमित्त आप ही थे। आपने क्रुद्ध होकर क्षीराब्धिशायी प्रभुको शाप दे दिया था*—

बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा। सोइ तनु धरहु श्राप मम एहा॥
कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी। करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी॥
मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी। नारि बिरहँ तुम्ह होब दुखारी॥
(मानस १। १३६। ३-४)

एक बार जब नीलोत्पलदलश्याम भगवान् श्रीराम रत्न-सिंहासनपर विराजित थे और भगवती सीता उन्हें चँवर डुला रही थीं, तब श्रीनारदजी वहाँ आकाशमार्गसे उतरे—

शुद्धस्फटिकसंकाशः शरच्चन्द्र इवामलः।
अतर्कितमुपायातो नारदो दिव्यदर्शनः॥

* यह प्रसङ्ग तुलसीकृत श्रीरामचरितमानसके बालकाण्डके आदिमें विस्तारसे वर्णित है।

तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय रामः प्रीत्या कृताञ्जलिः।
ननाम शिरसा भूमौ सीतया सह भक्तिमान्॥
(अ० रा०, अयो० १। ४-५)

'शुद्ध स्फटिकमणिके समान स्वच्छ और शरच्चन्द्रके समान निर्मल दिव्यमूर्ति श्रीनारदजीको इस प्रकार अचानक आते देख भगवान् राम सहसा उठ खड़े हुए और सीताजीके सहित प्रेम और भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर पृथिवीपर सिर रखकर भगवान्‌ने उन्हें प्रणाम किया।'

श्रीभगवान्‌की मधुर वाणीसे अत्यन्त उपकृत हो श्रीनारदजीने प्रभुकी स्तुति करते हुए कहा—

त्वत्त एव जगज्जातं त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्।
त्वय्येव लीयते कृत्स्नं तस्मात्त्वं सर्वकारणम्॥
त्वत्पादभक्तियुक्तानां विज्ञानं भवति क्रमात्।
तस्मात्त्वद्भक्तियुक्ता ये मुक्तिभाजस्त एव हि॥
त्वन्नाभिकमलोत्पन्नो ब्रह्मा मे जनकः प्रभो।
अतस्तवाहं पौत्रोऽस्मि भक्तं मां पाहि राघव॥
(अ० रा०, अयो० १। २५, २९, ३१)

'यह सम्पूर्ण जगत् आपसे ही उत्पन्न हुआ है, आपमें ही स्थित है और आपमें ही लीन होता है। इसलिये आप ही सबके कारण हैं।' 'आपके चरण-कमलोंकी भक्तिसे युक्त पुरुषोंको ही क्रमशः ज्ञानकी प्राप्ति होती है। अतः जो पुरुष आपकी भक्तिसे युक्त हैं, वे ही वास्तवमें मुक्तिके पात्र हैं।' 'प्रभो! आपके नाभि-कमलसे उत्पन्न हुए ब्रह्माजी मेरे पिता हैं, अतः मैं आपका पौत्र हूँ। राघव! मुझ भक्तकी रक्षा कीजिये।'

फिर श्रीनारदजीने कमलनयन श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'प्रभो! मुझे ब्रह्माजीने आपके पास भेजा है। आपका राज्याभिषेक होनेवाला है; पर आपने तो रावणका वध कर धरती-को पापमुक्त करनेके लिये अवतार लिया है। राज्य-भार स्वीकार करनेपर आपकी प्रतिज्ञाकी रक्षा कैसे होगी?'

'निस्संदेह मैं अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करूँगा।' श्रीरामके इस दृढ़ वचनको सुनकर श्रीनारदजीने प्रसन्न होकर प्रभुकी तीन परिक्रमाएँ कीं और उनके भक्त-भय-हरण चरण-कमलोंमें दण्डवत्-प्रणाम कर देवलोकके लिये प्रस्थित हुए।

फिर सीता-हरणके पश्चात् जब श्रीराम वियोगी पुरुषकी लीला करते हुए एक वृक्षकी घनी छायामें विश्राम कर रहे थे, तब श्रीनारदजीके मनमें बड़ा विचार हुआ। उन्होंने सोचा—

मोर साप करि अंगीकारा। सहत राम नाना दुख भारा॥
ऐसे प्रभुहि बिलोकउँ जाई। पुनि न बनिहि अस अवसरु आई॥
(मानस ३ । ४० । ३-३½)

'मेरे ही शापको स्वीकार करके श्रीरामजी नाना प्रकारके दुःखोंका भार सह रहे हैं। मैं ऐसे प्रभुको जाकर देखूँ। फिर ऐसा अवसर न बन आयेगा।'

इस विचारसे वीणापर हरिगुण-गान करते हुए श्रीनारदजी प्रभु श्रीरामके समीप पहुँचकर उनके चरणोंमें लोट गये। भक्तवत्सल प्रभु श्रीरामने उन्हें उठाकर हृदयसे लगा लिया। अनेक प्रकारसे प्रभुकी स्तुति-प्रार्थना कर श्रीनारदजीने अत्यन्त विनम्रतासे निवेदन किया—'अस बर मागउँ करउँ ढिठाई॥' (मानस० ३ । ४१ । ३)—'नाथ! आप कृपापूर्वक मुझे ऐसा वर दीजिये।' प्रभु श्रीरामने श्रीनारदजीसे अपना स्वभाव बताया—

जानहु मुनि तुम्ह मोर सुभाऊ। जन सन कबहुँ कि करउँ दुराऊ॥
कवन बस्तु असि प्रिय मोहि लागी। जो मुनिबर न सकहु तुम्ह मागी॥
जन कहुँ कछु अदेय नहिं मोरें। अस बिस्वास तजहु जनि भोरें॥
(मानस ३ । ४१ । २-२½)

श्रीरामजीने कहा—'मुनि! तुम मेरा स्वभाव जानते ही हो! क्या मैं अपने भक्तोंसे कभी कुछ छिपाता हूँ? मुझे ऐसी कौन-सी वस्तु प्रिय लगती है, जिसे हे मुनिश्रेष्ठ! तुम नहीं माँग सकते? मुझे भक्तके लिये कुछ भी अदेय नहीं है। ऐसा विश्वास भूलकर भी मत छोड़ना।'

तब श्रीनारदजीने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—'प्रभो! मैं धृष्टता कर ऐसा वर चाहता हूँ—

जद्यपि प्रभु के नाम अनेका। श्रुति कह अधिक एक तें एका॥
राम सकल नामन्ह ते अधिका। होउ नाथ अघ खग गन बधिका॥
(मानस ३ । ४१ । ४)

'प्रभो! यद्यपि आपके अनेक नाम हैं और वेद कहते हैं कि वे सब एक-से-एक बढ़कर हैं, तो भी हे नाथ! रामनाम सब नामोंसे बढ़कर हो और पापरूपी पक्षियोंके समूहके लिये वह वधिकके समान हो।'

'एवमस्तु!' भगवान् श्रीरामके मुखारविन्दसे ये शब्द सुनकर हर्षोल्लासमें श्रीनारदजीने प्रभुसे पूछा—'प्रभो! आपकी मायासे मोहित होकर जब मैं विवाह करना चाहता था, तब आपने मुझे विवाह क्यों नहीं करने दिया?'

भगवान् श्रीरामने उत्तर दिया—

सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा। भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा॥
करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी॥
गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई। तहँ राखइ जननी अरगाई॥
(मानस ३ । ४२ । २-३)

अवगुन मूल सूलप्रद प्रमदा सब दुख खानि।
ताते कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जियँ जानि॥
(मानस ३ । ४४)

'मुनि! सुनो, मैं तुम्हें हर्षके साथ कहता हूँ कि जो समस्त आशा-भरोसा छोड़कर केवल मुझको ही भजते हैं, मैं सदा उनकी वैसे ही रखवाली करता हूँ, जैसे माता बालककी रक्षा करती है। छोटा बच्चा जब दौड़कर आग और साँपको पकड़ने जाता है, तब वहाँ माता उसे (अपने हाथों) अलग करके बचा लेती है।'

'युवती स्त्री अवगुणोंकी मूल, पीड़ा देनेवाली और सब दुःखोंकी खान है। इसलिये हे मुनि! मैंने जीमें यही सोचकर तुमको विवाह करनेसे रोका था।'

श्रीनारदजी दयामय प्रभुके वचन सुनकर कृतार्थ हो गये, उनके हर्षकी सीमा नहीं रही। उन्होंने प्रभु श्रीरामसे और कुछ प्रश्न किया और उनके उत्तरसे आप्यायित होकर प्रभुके चरणोंमें बार-बार प्रणाम किया। तदनन्तर वहाँसे वे ब्रह्मपुरके लिये चले गये।

अपौरुषेय वेदके बाद संस्कृत-साहित्यका प्राचीनतम ऐतिहासिक ग्रन्थ महर्षि वाल्मीकिविरचित रामायण है, जिसे 'आदि काव्य' होनेका गौरव प्राप्त है। उस श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणकी रचना मूलरामायणके आधारपर हुई है। मूल रामायण श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणके आदिकाण्डका प्रथम अध्याय है। उसमें महर्षि वाल्मीकिजीने श्रीनारदजीसे सोलह प्रश्नोंमें पूछा है कि 'इस समय मर्त्यलोकमें प्रशस्त गुणयुक्त कौन पुरुष है?' श्रीनारदजीने तपस्विप्रवर श्रीवाल्मीकिजीको उत्तरमें बताया कि 'आपने जिन गुणोंसे संयुक्त महापुरुषको पूछा है, यद्यपि उनमें बहुत-से ऐसे गुण हैं, जिनका होना मनुष्योंमें दुर्लभ है, तथापि आपके पूछे हुए गुणोंसे संयुक्त इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न श्रीराम नामक महापुरुष है।' और वहाँ श्रीनारदजीने भगवान् श्रीरामके दुर्लभ गुणोंको बताते हुए संक्षिप्त रामचरित्रका वर्णन किया है। श्रीनारदजीके उत्तरको सुनकर महर्षि वाल्मीकिने शिष्योंके साथ उनकी पूजा की।

कुछ दिनों बाद क्रौञ्च-वधसे महर्षिके मुँहसे 'मा निषाद प्रतिष्ठां त्वम्' (वा० रा० १ । २ । १५) श्लोकबद्ध वाणी निकलनेपर वे तमसा-तीरपर विचारमग्न बैठे थे कि चतुर्मुख ब्रह्माजीने आकर उनसे कहा—

रामस्य चरितं कृत्स्नं कुरु त्वमृषिसत्तम ।
धर्मात्मनो भगवतो लोके रामस्य धीमतः ॥
वृत्तं कथय धीरस्य यथा ते नारदाच्छ्रुतम् ।
रहस्यं च प्रकाशं च यद्वृत्तं तस्य धीमतः ॥
(वा० रा० १ । २ । ३२-३३)

अर्थात् 'संसारमें उन सर्वव्यापी भगवान् श्रीरामके चरितको आप कहिये, जो परम धर्मात्मा और परम बुद्धिमान् हैं। यदि आप इस कठिन कार्यको अपने लिये असम्भव समझें तो हम कहते हैं, वह कठिन नहीं है । प्रकाश्य या गुप्त जो कुछ श्रीरामचन्द्रका चरित आपने नारदजीसे सुना है, उसीको विस्तारके साथ कहिये ।'

इस प्रकार आदिकाव्यके द्वारा मङ्गलमय श्रीरामचरित्रके प्रचार-प्रसारके मूलमें भी प्रभु-गुण-गायक श्रीनारदजी ही हेतु हैं।

श्रीनारदजीने अपनी स्थितिके सम्बन्धमें स्वयं कहा है—

प्रगायतः स्ववीर्याणि तीर्थपादः प्रियश्रवाः ।
आहूत इव मे शीघ्रं दर्शनं याति चेतसि ॥
(श्रीमद्भा० १ । ६ । ३४)

'जब मैं उन परमपावन-चरण उदारश्रवा प्रभुके गुणोंका गान करने लगता हूँ, तब वे प्रभु अविलम्ब मेरे चित्तमें बुलाये हुएकी भाँति तुरंत प्रकट हो जाते हैं ।'

ऐसे परम पुण्यमय करुणामूर्ति श्रीराम-गुण-गायक देवर्षि नारदके पवित्रतम चरण-सरोरुहमें हमारे अनन्त दण्डवत्-प्रणाम ।

भाग्यवान् भरद्वाज मुनि

अत्यन्त तपस्वी, परम कारुणिक, श्रीरामचरणानुरागी श्रीभरद्वाज मुनिका आश्रम गङ्गा-यमुनाके संगमके समीप तीर्थराज प्रयागमें था । आश्रम एकान्त देशमें बड़ा ही पवित्र एवं रमणीय था । उसकी प्राकृतिक छटा अत्यन्त मनोरम थी । वहाँ श्रीभगवान्‌की पूजा, उनकी लीला-कथाका गायन एवं श्रवण तथा भजन अहर्निश होता रहता था । आश्रममें यज्ञ-धूम आकाशमें उड़ता रहता था और वातावरण दिव्य गन्धसे पूरित रहता था । भगवान् श्रीरामने प्रयागमें यज्ञके उठते हुए धुएँको देखकर लक्ष्मणजीसे कहा था—

प्रयागमभितः पश्य सौमित्रे धूममुत्तमम् ।
अग्नेर्भगवतः केतुं मन्ये संनिहितो मुनिः ॥
(वा० रा०, अयो० ५४ । ५)

'सुमित्रानन्दन ! वह देखो, प्रयागके पास भगवान् अग्निदेवकी ध्वजारूप उत्तम धूम उठ रहा है । मालूम होता है, मुनिवर भरद्वाज यहीं हैं ।'

भरद्वाज मुनिने तपस्याके प्रभावसे तीनों कालोंकी सारी बातें जाननेकी दिव्य शक्ति प्राप्त कर ली थी । भगवान् श्रीरामके प्रति आपकी अद्भुत भक्ति थी । इसी कारण भगवान् श्रीराम अपने भाई लक्ष्मण और पत्नी सती सीतासहित इनके आश्रममें पहुँचे । श्रीरामको दण्डवत्-प्रणाम करते हुए देखकर भरद्वाजजीने अत्यन्त स्नेहसे उन्हें हृदयसे लगा लिया । फिर भरद्वाजजीने प्रभुसे कुशल पूछकर उन्हें पवित्र आसनपर बैठाया और प्रेमपूर्वक उनकी पूजा की । इसके अनन्तर उन्होंने श्रीरामसे कहा—

आजु सुफल तपु तीरथ त्यागू । आजु सुफल जप जोग बिरागू ॥
सफल सकल सुभ साधन साजू । राम तुम्हहि अवलोकत आजू ॥
लाभ अवधि सुख अवधि न दूजी । तुम्हरें दरस आस सब पूजी ॥
अब करि कृपा देहु बर एहू । निज पद सरसिज सहज सनेहू ॥

करम बचन मन छाड़ि छलु जब लगि जनु न तुम्हार ।
तब लगि सुखु सपनेहुँ नहीं किएँ कोटि उपचार ॥
(रा० च० मा० २ । १०६ । ३-४; १०७)

'राम ! आपका दर्शन करते ही आज मेरा तप, तीर्थ-सेवन और त्याग सफल हो गया । आज मेरा जप, योग और वैराग्य सफल हो गया और आज मेरा सम्पूर्ण शुभ साधनोंका समुदाय भी सफल हो गया । लाभकी सीमा और सुखकी सीमा (प्रभु-दर्शनके अतिरिक्त) दूसरी कुछ भी नहीं है । आपके दर्शनसे मेरी सब आशाएँ पूर्ण हो गयीं । अब कृपा करके यह वरदान दीजिये कि आपके चरण-कमलोंमें मेरा स्वाभाविक प्रेम हो । जबतक कर्म, वचन और मनसे छल छोड़कर मनुष्य आपका दास नहीं हो जाता, तबतक करोड़ों उपाय करनेसे भी, स्वप्नमें भी वह सुख नहीं पाता ।'

प्रभु श्रीरामने रात्रिमें वहाँ निवास किया और प्रातःकाल भरद्वाज मुनिसे मार्ग पूछकर आगे चलनेके लिये ज्यों ही वे उद्यत हुए, तो भरद्वाजजीका हृदय भर आया । उनके मुँहसे वाणी नहीं निकल रही थी, पर—

तेषां स्वस्त्ययनं चैव महर्षिः स चकार ह।
प्रस्थितान् प्रेक्ष्य तांश्चैव पिता पुत्रानिवौरसान्॥
(वा० रा० २। ५५। २)

'उन तीनोंको प्रस्थान करते देख महर्षिने उनके लिये उसी प्रकार स्वस्तिवाचन किया, जैसे पिता अपने औरस-पुत्रों-को यात्रा करते देख उनके लिये मङ्गल-सूचक आशीर्वाद देता है।'

आगे जाते हुए भगवान् श्रीरामने लक्ष्मणजीसे महर्षि भरद्वाजकी महिमा बताते हुए कहा—

'कृतपुण्याः स्म भद्रं ते मुनिर्यन्नोऽनुकम्पते॥'
(वा० रा० २। ५५। ११)

'ये मुनि, जो हमारे ऊपर इतनी कृपा रखते हैं, इससे जान पड़ता है कि हमलोगोंने पहले कभी महान् पुण्य किया है।'

कुछ ही समय बाद श्रीभरतजी भी अयोध्यावासियों-सहित प्रभु श्रीरामको वनसे लौटाने जाते समय महामुनि भरद्वाजजीके आश्रममें पहुँचे। वहाँ महामुनिने अपनी सिद्धियोंके द्वारा भरत एवं उनके साथ सभी स्त्री-पुरुषोंके भोजन एवं विश्रामकी राजोचित व्यवस्था कर दी। भरद्वाजजीके प्रभावको देखकर सभी चकित हो गये। भरद्वाजजीने वहाँ श्रीरामजीके प्रति भरतजीकी भक्तिकी प्रशंसा करते हुए उनसे कहा था—

सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं। उदासीन तापस बन रहहीं॥
सब साधन कर सुफल सुहावा। लखन राम सिय दरसनु पावा॥
तेहि फल कर फलु दरस तुम्हारा। सहित पयाग सुभाग हमारा॥
(मानस २। २०९। २-२½)

'भरत! सुनो, हम झूठ नहीं कहते। हम उदासीन हैं, तपस्वी हैं और वनमें रहते हैं। सब साधनोंका उत्तम फल हमें लक्ष्मणजी, श्रीरामजी और सीताजीका दर्शन प्राप्त हुआ। [सीता-लक्ष्मणसहित श्रीरामदर्शनरूप] उस महान् फलका परम फल यह तुम्हारा दर्शन है। प्रयागराजसहित हमारा बड़ा भाग्य है।

भरद्वाज मुनि श्रीराम-कथाके अद्भुत प्रेमी थे। एक बार माघ-स्नानके निमित्त महर्षि याज्ञवल्क्य भरद्वाजजीके आश्रमपर पहुँचे। भरद्वाजजीने उनका बड़ा सत्कार किया और फिर उनके सम्मुख श्रीरामके सम्बन्धमें अनेक शङ्काएँ प्रकट कीं। तब याज्ञवल्क्यजी मुस्कराकर बोले—

.................। तुम्हहि बिदित रघुपति प्रभुताई॥
रामभगत तुम्ह मन क्रम बानी। ....॥
(मानस १। ४६। २-२¾)

'तुम तो श्रीरघुनाथजीके प्रतापको जानते हो और तुम मन, वचन और कर्मसे श्रीरामजीके भक्त हो।' फिर आगे उन्होंने कहा—'तुम इसी बहाने श्रीरामजीके रहस्यमय गुणोंको सुनना चाहते हो, इसी कारण मूढ़की तरह तुमने प्रश्न किया है।'

फिर सम्पूर्ण राम-कथा भरद्वाजजीने अत्यन्त श्रद्धा-पूर्वक श्रवण की। वही श्रीराम-कथा भगवान् शंकरने श्रीपार्वतीजीको सुनायी।

ऐसे रामभक्त भरद्वाज मुनिके भाग्यकी प्रशंसा कैसे की जाय! वे निश्चय ही भाग्यवान् थे।

श्रीराम-भजनकी महिमा

(रचयिता—संत श्रीसुंदरदासजी)

रामनाम मिश्री पियैं, दूरि जाहिं सब रोग। सुंदर औषध कटुक सब जप, तप, साधन जोग॥
राम-नाम पीयूष तजि विष पीवैं मतिहीन। सुंदर डोलैं भटकते जन-जन आगें दीन॥
राम-नाम भोजन करै, राम-नाम जलपान। राम-नाम सौं मिलि रहै, सुंदर राम-समान॥
राम-नाम सोवत कहै, जागें हरि-हरि होइ। सुंदर बोलत ब्रह्म मुख, ब्रह्म-सरीखा सोइ॥
सुंदर भजिये राम कौं, तजिये माया-मोह। पारस के परसे बिना दिन-दिन छीजै लोह॥
राम-भजन रामहि मिलै, तामैं फेर न सार। सुंदर भजै सनेह सौं, वाकौं मिलत न वार॥
सदगुरु दादू राम भजि, सदा रहै लै लीन। सुंदर याही समझि कैं राम भजन हित कीन॥

[सुन्दरग्रन्थावली]

हिंदीके कतिपय अन्य रामभक्त कवि*

(लेखक—श्रीरामलाल)

(१)

महात्मा सहजराम

भगवान्‌के पावन चरित्र-चिन्तनका सौभाग्य बड़े पुण्य और तपके फलस्वरूप ही मिलता है। पृथ्वीपर जन्म लेकर जो प्राणी भगवान्‌के भजनको ही जीवनका ध्येय मानता है, वह धन्य है। महात्मा सहजराम ऐसे ही उच्चकोटिके कवि थे। उन्होंने भगवान् रामके पवित्र लीला-चरित्रोंके चिन्तनसे अपना कवि-जीवन सार्थक और सरस किया। उन्होंने रामके पवित्र यशोगानके लिये 'रघुवंशदीपक' नामक महाकाव्यकी रचना की। अवधी भाषामें लिखा गया यह काव्य रामचरित्रपरक रचनाओंमें अत्यन्त विशिष्ट स्वीकार किया गया है। महात्मा सहजराम उत्तरप्रदेशके सुल्तानपुर जनपदके बँधुवा ग्रामके निवासी थे।

'रघुवंशदीपक' महाकाव्यमें महात्मा सहजरामजीने चिन्मय युगल-दम्पति श्रीसीतारामके रूप, सौन्दर्य और माधुर्यका बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। वनमें निवासका प्रसङ्ग है। श्रीराम जानकीके साथ स्फटिक-शिलापर विराजमान थे। श्रीरामकी उक्ति है—

बिन भूषन तुम सोहत कैसे। बिन घन सरद चाँदनी जैसे॥
तन-छबि भूषन लेत छिपाई। सरद-गंग-जल ऊपर काई॥
हम तुम ते भूषित सियरानी। रति ते काम बिरति ते ग्यानी॥

इस तरह भगवान् रामने सीताके रूप-सौन्दर्यकी प्रशंसा की।

पञ्चवटी-निवासके समय एक दिन श्रीलक्ष्मणजीने प्रभुसे निवेदन किया कि 'भव-भयकी हरनेवाली ज्ञान-वैराग्यसहित अपनी भक्तिपर प्रकाश डालिये।' श्रीराघवेन्द्रने लक्ष्मणजीको समझाया—

विषइन की इच्छा दुख नाना। सो सुख जानै सपन समाना॥
बंध-मुक्ति की जानै जुक्ती। सो पंडित पावै सद्‌मुक्ती॥
मम पद बिमुख देह-अभिमानी। सो जानौ जग मूरख प्रानी॥
पावै मोहि पंथ सो साँचा। रत परिबर्त कुपंथ असाँचा॥

सीतल-चित संतोष-रत, तात स्वर्ग सुख सोइ।
नरक-निवासी तामसी जम-फाँसी बस होइ॥

(रघुवंशदीपक, अरण्यकाण्ड)

सहजरामने सच्चा सुख तो यही माना कि जीवात्मा सदा परमात्माके सम्मुख रहे। उनकी उक्ति है—

'सहज राम हरि पद बिमुख सुख सपनो है जात।'

(रघुवंशदीपक, अरण्यकाण्ड)

रामके पदका चिन्तन ही परम सुख है। रामकाव्यकार सहजरामके विचारसे भगवान् राम अपने शरणागतको भक्ति-फल प्रदान करते हैं—

सहजराम जिमि कामतरु, रघुबर सरल सुभाउ।
सरनागत कहँ देत फल गनत न दाहिन बाउँ॥

(रघुवंशदीपक, अरण्यकाण्ड)

सबमें श्रीरामको ही परिव्याप्त देखना चाहिये। यही वेद, आगम और पुराणोंद्वारा प्रतिपादित अकाट्य भक्ति-सिद्धान्त है। कविकी उक्ति है—

आगम निगम पुरान, सब को यह सिद्धांत मत।
अग जग जीव जहान, देखहि सब रघुनाथमय॥

(रघुवंशदीपक, अरण्यकाण्ड)

महात्मा सहजरामने रामनामको ही सुखद सम्बल बताया है। उनका 'रघुवंशदीपक' महाकाव्य रामचरित सिन्धुका सनातन स्थायी दीपक है, जिसके प्रकाशमें प्राणी परमात्मा रामके रूप-सौन्दर्य और ऐश्वर्य-माधुर्यका दर्शन करनेमें समर्थ होता है।

(२)

संत कवि-लालदास

संत कवि महात्मा लालदासने 'अवध-विलास' नामक काव्यकी रचना शक संवत् १७३२में श्रीअयोध्यामें पूरी की थी। उन्होंने रामचरितमानसकी अनुकृतिके रूपमें इस रामपरक काव्यको दोहों-चौपाइयोंमें रचा। इसमें बड़ी प्रासादिक

---

* श्रीरामाङ्कके पृष्ठ ५७३ से ५९९ तक 'भारतीय भाषाओंके कुछ प्रमुख राम-कथाकार' तथा 'हिंदीके मध्यकालीन कतिपय रामभक्त कवि' शीर्षकोंसे कई मध्यकालीन प्रमुख रामभक्त कवियोंकी चर्चा की जा चुकी है। स्थान-संकोचके कारण सभी कवियोंका समावेश 'श्रीरामाङ्क' में नहीं हो पाया। अतः अवशिष्ट उत्तरकालिक कुछ कवियोंकी चर्चा इस अङ्कमें जा रही है। —सम्पादक

और सरस शैलीमें भगवान् रामके पवित्र चरित्रके अनेक प्रसङ्गोंका चित्रण किया गया है। महात्मा लालदासने भगवान् रामको वनमें तो पहुँचा दिया, पर उनके भक्त हृदयको सीताहरण, रावणवध आदि प्रसङ्गोंका वर्णन अच्छा नहीं लगा। अपने आराध्य श्रीरामकी प्रेरणासे वे जितनी मात्रामें उनका चरित्र-चित्रण कर सके, उतनीसे ही उन्हें संतोष मिला। रामायणोंमें तो रामका चरित्र विस्तारसे भरा पड़ा है। लालदासका कथन है—

रामायन सत कोटि है, रामहि जानत ताहि।
कै कोउ जानत संत जन, राम जनावहिं जाहि॥
(अवध-विलास, पहला विश्राम)

महात्मा लालदास श्रीरामानुजाचार्यके सम्प्रदायके अनुयायी थे। उन्होंने अपने इस काव्यमें बड़े आदरसे श्रीरामानुजाचार्य-की स्तुति और वन्दना की है। 'अवध-विलास' काव्यके नायक भगवान् राम हैं। इसमें बीस विश्रामोंमें राम-चरित्रके अनेक प्रसङ्गोंका चित्रण भक्तिपूर्ण हृदयसे किया है लालदासने।

भगवान् रामके मिथिला-प्रवेशका प्रसङ्ग है। विदेह जनक-ऐसे आत्मज्ञानी श्रीरामके सच्चिदानन्दस्वरूपके सौन्दर्य-माधुर्यसे विमुग्ध हो गये। लालदासका कथन है—

अंग अंग सोभा अवगाहैं। बार-बार नृप देखि सराहैं॥
किधौं ये अगुन ब्रह्म सुखदाई। परषन मोहि सगुन भे आई॥
(अवध-विलास, सत्रहवाँ विश्राम)

महात्मा लालदासने 'अवध-विलास'में अम्बा कैकेयीके राम-वनवासके आयोजन-सम्बन्धी पुण्यकार्यकी बड़ी सराहना की है। भगवान् रामकी प्रेरणासे ही उन्होंने अपने आपको कलङ्किनी सिद्धकर भूमि-भार-हरणके कार्यका भगवान् रामद्वारा सम्पादन कराया। श्रीसीता-स्वयंवरके बाद एक दिन नारदजी श्रीरामका दर्शन करने आये और उन्हें रावण-वधकी प्रेरणा देकर चले गये। श्रीराम चिन्तित हो उठे कि वनवासका किसे निमित्त बनाया जाय। कैकेयीके उदासीका कारण पूछनेपर उन्होंने कहा—'अवध-विलास'के उन्नीसवें प्रकाशका प्रसङ्ग है—

'बोले राम मोहि वनचारी। राजहि कहि कर सो हितकारी॥'
(अवध-विलास, उन्नीसवाँ विश्राम)

कैकेयीने कहा कि 'यदि इस कार्यमें कोई दोष न हो तो आपकी प्रसन्नताके लिये मैं राजाको आपको रावण आदि असुरोंका वध करनेके लिये वन भेजनेकी प्रेरणा दे सकती हूँ। मुझे लोक-अपयशका तनिक भी भय नहीं है।' कैकेयीने श्रीरामकी प्रशंसामें कहा कि 'आप चराचरके प्राणाधार प्रियतम हैं, आपकी ही प्रसन्नताके लिये लोग यज्ञ, योग, तीर्थ, व्रत और दान आदि करते हैं। आप जिस कार्यसे संतुष्ट होंगे, मैं वही करूँगी। आपका भजन करनेवाले अपयशसे नहीं डरते।' श्रीरामने कैकेयीसे कहा—'माँ! आप ठीक ही कह रही हैं। आपने अपने कंधेपर बहुत बड़ा भार स्वीकार कर लिया है।' लालदासने भगवान् रामके मुखसे वन-गमनके बाद होनेवाली अयोध्याकी भावी स्थितिका बड़ा ही करुण चित्रण कराया है—

मेरे बिरहँ पिता पुनि मरिहै। तोहि अजस अति होइ न परिहै॥
भरत भोग तजि जोगी होई। कौसिल्या दुख करिहै सोई॥
× × ×
अवधपुरी के बासी जेते। है हैं सबहि उदासी तेते॥
(अवध-विलास, उन्नीसवाँ विश्राम)

'अवध-विलास'में श्रीराम और कैकेयीके सम्बन्धको लेकर मौलिक चिन्तन मिलता है। महात्मा लालदासने यह नहीं स्वीकार किया कि भगवान् राम वनमें गये। उनकी स्वीकृति है कि 'अन्य कवियोंने इस तरहकी बात कही है, इसलिये मैं भी ऐसा ही मानता हूँ।' उन्होंने वेदान्तदर्शनकी भाषामें कहा—'अवध-विलास'में उक्ति है—

'मम मत राम गये नहिं कतहूँ। और कबिन की कही कहत हूँ॥'

महात्मा लालदासने अपने 'अवध-विलास' काव्यमें राम, लक्ष्मण और सीताके स्वरूप-चिन्तनमें बड़ी व्यापक दृष्टिका उपयोग किया है। उनकी स्वीकृति है—

सीता राम लखन हैं सोई। माया ब्रह्म जीव जे होई॥
ब्रह्माश्रित रहैं जीव रु माया। जैसें संग वृच्छ की छाया॥
जहँ लगि पुरुष, राम सब जानो। तिय सीता निहचै करि मानो॥
(अवध-विलास, बीसवाँ विश्राम)

समस्त वनप्रान्तमें वनवासी रामके लिये जिस राज्यकी स्थापना प्रकृतिने की, उसका वैभव-वर्णन 'अवध-विलास' में लालदासकी मौलिक देन है—

सित सिंघासन लता विताना। मंजरि चमर चलत तहँ नाना॥
तरु तमाल के मूल सुहाये। तकिया दै बैठहिं मन भाये॥
पंछी प्रजा करत व्योहारा। चुहल होत बन-नगर मँझारा॥

× × ×

नाचत मोर, कोकिला गावत । तानँ-भाव अनेक दिखावत ॥
पीपर पात तारु सो बाजत । झरना झरत पखाउज राजत ॥
मंदाकिनी महासुख दीना । उड़पति गती लेत हैं मीना ॥

× × ×

यह सुख देखि राम मुसकाने । हम बन आइ कवन तप ठाने ॥

(अवध-विलास, बीसवाँ विश्राम)

महात्मा लालदासके रामने अन्य रामपरक काव्यकी रचना करनेवाले कवियोंके रामकी ही तरह भूमिका भार उतारनेके लिये अवतार लिया । 'अवध-विलास'के रचयिताकी उक्ति है—

'भक्त काज भू-भार उतारन । सगुन सरूप धरत भवतारन ॥

कविने स्वीकार किया है कि—"मेरा 'अवध-विलास' नामक काव्य समुद्रके समान है । साधु-संतोंके लिये यह सुगम है, इसमें भगवान्‌की कथारूपी रत्नराशि भरी पड़ी है ।" काव्यके आरम्भमें ही कविका कथन है—

अवध विलास समुद्र है, साधु-साह तरि जाहिं ।
रतन कथा रघुबीर की लाल बहुत ता माहिं ॥

महात्मा लालदासने गोस्वामी तुलसीदासकी रामकाव्य-परम्पराके अनुगमनमें 'अवध-विलास'का प्रणयन कर भगवान् रामके चरितामृतका आस्वादन किया तथा स्वान्तःसुखकी सिद्धि की ।

(३)

रामभक्त कवि मधुसूदनदास

कवि मधुसूदनदास भगवान् रामके अनन्य भक्त थे । उन्होंने संवत् १८३९ वि० में 'रामाश्वमेध' नामक काव्यकी रचना की । इस काव्यमें भगवान् रामके उत्तरचरित्रका बड़े ही भक्तिपूर्ण ढंगसे वर्णन किया गया है ।

श्रीराम-भरतके मिलन-प्रसङ्गमें मधुसूदनदासने करुणरसका साकार चित्र प्रस्तुत कर दिया है । भरतजीके दैन्ययुक्त प्रेमकी दशा देख, अभिमानका त्याग कर वे उनसे मिलनेके लिये दौड़ पड़े । उनके मुखसे केवल 'बन्धु, बन्धु' शब्द ही निकल रहा था, आँखोंसे जलकी वृष्टि हो रही थी । भरतकी दशा भी देखते ही बनती थी । 'रामाश्वमेध'के दूसरे अध्यायका प्रसङ्ग है—

दोउ भुज भरि भेटहिं रघुबीरा । हरष सोक बस सिथिल सरीरा ॥
राम उठाव भरत नहिं उठहीं । बहुत भाँति करुना तहँ करहीं ॥

× × ×

। उठहिं न भरत मानि हतभागी ॥

उन्होंने श्रीरामसे अपना दैन्य निवेदन किया—

सुनहु विनय, रघुनाथ उदारा । दुराचार महँ दृष्टि अपारा ॥
अघ-समूह मैं, सुनहु कृपाला । रामचंद्र ! तुम दीन दयाला ॥
महाबाहु करुना सुख-सागर । कृपा करहु, प्रभु ! लखि खल आगर ॥

श्रीरामने भरतको हृदयसे लगा लिया । कितनी महनीय भक्तवत्सलताका काव्यगत चित्रण है यह ! भरतके व्याजसे 'रामाश्वमेध'के प्रणेताने अपना दैन्यभाव श्रीरामके चरणोंमें समर्पित कर दिया है ।

श्रीराम लङ्का-विजयके बाद अयोध्या-प्रवेशकालमें अम्बा कैकेयीसे मिलने गये । कैकेयीके मनमें अपनी कृतिपर बड़ी ग्लानि थी । श्रीराम और भरतने उनके चरणोंमें प्रणाम निवेदन किया । अम्बा संकोचमें थीं, उन्होंने प्रणामका उत्तर नहीं दिया । ऐसे अवसरपर रामभक्त मधुसूदनदासकी सौभाग्यवती काव्य-भारती प्रभुके मुखसे प्रकट होकर श्रीरामके पुण्य-चरित्रका जो शब्दाङ्कन करती है, वह 'रामाश्वमेध'के वैशिष्ट्यका प्रतीक है । भगवान् रामने कैकेयीसे कहा—

जननि-प्रबोधिनि गिरा सुहाई । बोले राम सुजन सुखदाई ॥
तुम प्रसाद जननी रन माहीं । बधे निसाचर, मम कृत नाहीं ॥

(रामाश्वमेध, चौथा अध्याय)

अयोध्यामें महर्षि अगस्त्य भगवान् रामका दर्शन करने आये और उन्होंने रावणकी उत्पत्तिकी कथा कही । रावणरूप ब्रह्मराक्षसके वधकी शान्तिके लिये अगस्त्यकी सम्मतिसे उन्होंने अश्वमेध यज्ञ करनेका निश्चय किया । यज्ञका अश्व छोड़ दिया गया और उसकी रक्षाका भार शत्रुघ्नको सौंपा गया । श्रीरामने उन्हें जो नीति सिखायी, उसमें रामराज्यका पवित्र आदर्श सुरक्षित है—

जो रन माहिं चढ़ें भट भारी । तिनहिं बधो संग्राम प्रचारी ॥
सैन समेत बाजि प्रतिपालहु । सन्मुख लरहु चढ़ै जो कालहु ॥
परधन विषसम मानहु भाई । तजहु नारि सब भाँति पराई ॥
नीच संग सब बिधि परिहरहू । साधु-समागम संतत करहू ॥

(रामाश्वमेध, दसवाँ अध्याय)

'रामाश्वमेध' अमितपुण्यप्रद तथा कलुषनाशक रामकाव्य है ।

(४)

महात्मा रामसखा

निस्संदेह वह प्राणी धन्य है, पुण्यशील और भाग्यशाली है, जिसका मन-भ्रमर राघवेन्द्र विश्वविमोहन राम और उनकी प्राणप्रियतमा जनकनन्दिनीके चरणारविन्द-मकरन्दका आस्वादन कर विषयातीत हो उठा है। श्रीअयोध्याके प्रमोदवनमें भगवान् सीतारामके सरस रूप-सौन्दर्यसे समलंकृत और नित्य प्राणमय नृत्यराघवकुञ्ज और श्रावणकुञ्जके दर्शनमात्रसे ही परम रामरसिक रामसखा महाराजका दिव्य भाव-लावण्य नयनोंमें अङ्कित हो जाता है। रामसखा महाराजने विक्रमकी उन्नीसवीं शतीके आरम्भमें अयोध्याको अपनी सरस उपस्थितिसे रस-वृन्दावनमें परिणत कर दिया। वे अयोध्याके श्रीभट्ट थे। जिस तरह वृन्दावनमें श्रीभट्टने प्रिया-प्रियतमका शास्त्रसम्मत श्रृङ्गार गाया, उसी तरह महात्मा रामसखाने सख्यभावमें आत्म-विभोर होकर रामकी सरस लीला गायी। वे विक्रमकी अठारहवीं शतीके अन्तिम चरणमें राजस्थान प्रदेशके जयपुर नगरमें एक परम पवित्र ब्राह्मणकुलमें पैदा हुए थे। वे उडुपीके मध्व-सम्प्रदायके प्रसिद्ध महात्मा श्रीवसिष्ठतीर्थके शिष्य थे। उन्होंने अवध-निवास-कालमें 'नृत्यराघव-मिलन' नामक सरस ग्रन्थकी रचना की। अयोध्यापति इष्टदेव सीतारामके स्वरूपचिन्तनमें महाराजकी विज्ञप्ति है—

कामरूप सब अवधनिवासी। रघुपति सम छबि भोग-बिलासी॥
तहँ रघुबीर बेष नृप सोहहिं। कोटिन कामन की छबि मोहहिं॥
द्वै भुज राम अखंडित रूपा। तैसहिं द्वै भुज सीय सरूपा॥
बय किसोर दोउ रहत सदाहीं। करत सुराज्य अवध जग माहीं॥

अवध-निवास-कालमें महाराज रामसखा नित्य कनक-भवनमें भगवत्-सखाके आचरणके अनुरूप ही सबेरे-शाम राघवेन्द्र सरकार और जगदम्बा जानकीजीका कुशल-समाचार लेने जाया करते थे। वे कभी कनकभवनमें प्रवेश नहीं करते थे, बाहरके प्रधान दरवाजेसे ही लौट आया करते थे। उनके मनमें इस बातको लेकर बड़ा स्वाभिमान था कि मैं जगदीश्वर रामका मित्र हूँ। वे आठ कहारोंकी पालकीपर ही कनक-भवन जाया करते थे, यह सोचकर कि उनके सखा भगवान् राम विश्वपति हैं, विश्वहितमें निरन्तर व्यस्त रहते हैं। उन्होंने दर्शन न करनेका नियम लिया था। मन्दिरका द्वारपाल पालकी देखते ही सामने खड़ा हो जाता था; महाराज पालकीसे बाहर निकलकर पूछ लिया करते थे कि 'सरकार सकुशल तो हैं' और जगदम्बा जानकीके चरणोंमें प्रणाम निवेदन कर अपने नृत्य-राघवकुञ्जमें चले आया करते थे। अवधमें रहते समय महाराजके प्रयत्नस्वरूप इस नियममें एक दिनके लिये भी शिथिलता नहीं आने पायी।

अयोध्यामें दर्शनार्थियोंकी भीड़ बढ़ती देखकर रामसखाजी महाराज चित्रकूट चले आये। महाराजकी उक्ति है कि चित्रकूट साक्षात् श्रीरामका स्वरूप है।

'चित्रकूट रघुनाथ-स्वरूपा।'

महाराजने 'नृत्यराघव-मिलन' ग्रन्थमें अपने विचार चित्र-कूटके सम्बन्धमें इन शब्दोंमें व्यक्त किये हैं—

अवध नगर ते आइ कें, चित्रकूट की खोर।
रामसखे मन हरि लियो, सुंदर जुगल किसोर॥
बड़े-बड़े नयना मारने, घूँघुरवारे बार।
रामसखे मन बस गयो, सुंदर राजकुमार॥

रामसखाजी नित्य भगवान् रामके सरस सच्चिदानन्द-स्वरूप-चिन्तनमें तत्पर रहते थे। अपने इष्टदेवके दर्शनके लिये वे निरन्तर विकल रहते थे। वे कहा करते थे—

अरे सिकारी निरदइ, करिया नृपति किसोर।
क्यों तरसावत दरस बिनु रामसखे चितचोर॥

रामसखा महाराज रामरसके मर्मज्ञ संत कवि थे। भगवान् रामके रासका विषय उनके चिन्तनका विशिष्ट अङ्ग था। वे सख्य-भाव-भक्तिके माध्यमसे रामके प्रति मधुरभावकी उपासना करते थे। उन्होंने अवधकी सरस भगवदीय लीलामें अप्रकट और प्रकट निकुञ्जरसकी दिव्य भूमिका अपने 'नृत्यराघव-मिलन' ग्रन्थमें इस प्रकार प्रस्तुत की—

बिपिन प्रमोद अवध निज धामा। जहँ नहिं माया कर कहुँ नामा॥
तहँ चिंतामनि भूमि सुहाई। सो रसिकन बाँटे लिखि पाई॥
अद्भुत रत्न पुलिन सरजू तट। झरत तहाँ द्युति-सुधा सोमबट॥
नटत राम तहँ नित्य बिहारी। लीन्हें संग सिया सुकुमारी॥

रामकी प्राप्ति अथवा मिलनमें ही महाराजने पराभक्ति-तत्त्वका निरूपण किया है। रामनामको ही उन्होंने अपनी मधुर-उपासनाका आधार बताया—

'राम-नाम यह रसमय नामा। रसिक अनन्यन को सुख-धामा॥'

रामसखा महाराजने आजीवन श्रीरामकी मधुररसपरक भक्तिका ही प्रचार किया।

(५)

महाराज रघुराजसिंह

मध्यप्रदेशके रीवाँराज्यके अधीश्वररूपमें महाराज रघुराजसिंहने राजवैभवके वातावरणमें रहकर भक्तिपूर्वक भगवान् राम और श्रीकृष्णका यशोगान किया, यह उनका महान् जीवन-वैशिष्ट्य था। उनका राज्यकुल भगवान्की कृपासे सम्पूर्ण सम्पन्न था। 'भक्तमाल'की प्रसिद्ध कथा है कि साक्षात् कृपामय भक्तवत्सल भगवान्ने इसी कुलके एक राजाको सेन नाईके रूपमें दर्शन देकर अपनी सेवाके प्रसादसे कृतार्थ किया था। महाराज रघुराजसिंहके पिता श्रीविश्वनाथ-सिंहजी भगवान् रामके भक्त थे और उन्होंने उनके सम्बन्धमें काव्यरचना की। महाराज रघुराजसिंहका जन्म संवत् १८८० वि० में हुआ था। वे पृथ्वीपर छप्पन सालतक विद्यमान रहे। उन्होंने जीवनके अन्तिम पाँच साल भगवान्के ही चिन्तनमें बिताये। राज्यकार्यसे सम्बन्ध तोड़कर वे अपने इष्टदेवका ही भजन करते रहे।

संत-महात्माओंमें उनका जन्मजात स्वाभाविक अनुराग था। भगवान्के भक्तोंके चरित्र-चिन्तनमें उनका बड़ा मन लगता था। उनकी 'रामरसिकावली' रचना भक्तोंके चरित्र-चिन्तनका सरस फल है। महाराज रघुराजसिंह भगवान् रामके प्रति दास्य-भावसे अनुरक्त थे। वे श्रीवाल्मीकि-रामायण और गोस्वामी तुलसीदासके रामचरितमानससे विशेष प्रभावित थे। उन्होंने विशेषरूपसे इनकी ही कृतियोंके आधारपर अपनी प्रसिद्ध रामचरित्रपरक रचना 'रामस्वयंवर' लिखी, जो रामभक्तिके साहित्यक्षेत्रकी एक विशिष्ट काव्यनिधि है। एक बार अपनी काशी-यात्रामें उन्होंने काशीनरेश महाराज ईश्वरीप्रसादनारायण-सिंहके आमन्त्रणपर रामनगरमें सम्पन्न होनेवाली रामलीलाका दर्शन किया। महाराज ईश्वरीप्रसादनारायणसिंहकी प्रेरणासे उन्होंने रामलीलाको विस्तृत रूप देनेके अभिप्रायसे 'राम-स्वयंवर' ग्रन्थकी रचना कर उसमें भगवान् रामके पवित्र-चरित्रका बड़ी सात्त्विकता और श्रद्धासे चिन्तन किया। यह ग्रन्थ तेईस काव्य-प्रबन्धोंमें संवत् १९३४ वि० में पूरा हुआ; बड़ा ही रसमय राम-काव्य है 'रामस्वयंवर'। इसमें राजकीय वैभवका विशद वर्णन मिलता है और ग्रन्थका अनुशीलन सिद्ध कर देता है कि किन्हीं बहुत बड़े राजराजेश्वरकी सौभाग्यवती लेखनीसे यह काव्यचरित्र प्रवाहित हुआ है। रघुराजसिंहजी-की स्वीकृति है कि श्रीरामका सुयश ही जगत्में परम पवित्र है—

'राम-स्वयंबर ग्रथ सुहावन। केवल राम सुजस जगपावन॥'

(रामस्वयंवर, २३ वाँ प्रबन्ध)

'रामस्वयंवर' काव्यमें महाराज रघुराजसिंहने श्रीराघवेन्द्र-के बालचरित्र तथा विवाह आदिका बड़े विस्तारसे वर्णन किया है। महाराजकी उक्ति है—

'रामस्वयंबर रचहुँ मैं, जन्म ब्याह बिस्तार।'

(रामस्वयंवर, ३रा प्रबन्ध)

महाराजने भगवान् रामकी बाललीलाका प्रसङ्ग प्रस्तुत करते हुए कहा है कि 'अचल समाधि लगाकर योगी जिनका ध्यान करते हैं और अनेक साधन करके भी जिनकी प्राप्ति अथवा साक्षात्कार नहीं कर पाते, ब्रह्मा, महेश, इन्द्र आदि समस्त देवगण और सिद्ध मुनि जिनकी शरणमें अभय होकर जीवन धारण करते हैं, जो वाणी, मन और इन्द्रियोंके विषय नहीं हैं, मोह-मायासे जो परे हैं, जो परब्रह्म परमेश्वर और परमप्रकाशमय परमपदपर प्रतिष्ठित हैं तथा जो समस्त विश्वका पोषण करते हैं, वे ही जगदीश्वर अयोध्यापति दशरथके आँगनमें बालरूपमें धूलि-धूसरित होकर बाललीलासे लोगोंको परमानन्द प्रदानकर विहार कर रहे हैं।'

जोगी जाहि अचल समाधि को लगाइ ध्यावैं
पावैं नहिं साधन अनेकन करत हैं।
संभु औ स्वयंभु सक्र सकल सुरासुरादि,
सिद्ध मुनि जाकी बाँह-छाँह बिचरत हैं॥
वाक-मन-गोचर-अतीत, मोह माया जीत
परब्रह्म परधाम बिस्व को भरत हैं।
सोई रघुराज आज अवध अधीस जू के
अजिर में धूरि धूसरित बिहरत हैं॥

(रामस्वयंवर, छठा प्रबन्ध)

विश्वामित्रके साथ मिथिला पधारनेपर रातमें शयनकालमें श्रीराम और लक्ष्मण मुनिके चरण दबाकर सेवा करने लगे। इस दृश्यको देखकर देवगण आश्चर्यचकित होकर कहने लगे—

जाकी पदरेनु चित्त चाहि कै स्वयंभु-संभु,
सिर में धरन हेत नेति-नेति ठने हैं।
जोगी जन जनम अनेकन बितावैं नहिं,
पावैं करि जोग-जाग, जुक्ति बहु आने हैं॥
मनै रघुराज आजहूँ लौं अंत पाये नाहिं,
नेति-नेति बेद औ पुरानहू बखाने हैं।
सोई प्रभु बिप्र चारु चापत चरन निज
कोमल करन, धन्य धन्य भगवाने हैं॥

(रामस्वयंवर, सत्रहवाँ प्रबन्ध)

महाराजने राजा जनकके उपवनमें फूल तोड़नेके लिये विचरण करनेवाले दशरथनन्दन राम और लक्ष्मणके चरणकी कोमलताका वर्णन उसमें नियुक्त मालिनियोंद्वारा जिस भक्ति और अनुरागमयी श्रद्धाके माध्यमसे कराया है, उसमें उनके हृदयकी सरस भावनाका बड़ा सुन्दर काव्य-अभिव्यञ्जन बन पड़ा है। मालिनियोंने कहा—

तुम स्यामल, गौर सुनो द्वउ लालन
आये कहाँ से उरायन में।
मिथिलेस की बाटिका में बिहरो,
हियरो हरो हेरि सुभायन में॥
इत कौन पठायो, दया नहिं लायो,
सुफूलन तोरो उपायन में।
रघुराज कहूँ गड़ि जैहैं लला,
पुहपान की माँखुरी पायन में॥

(रामस्वयंवर, अठारहवाँ प्रबन्ध)

वनवाससे भगवान् रामके लौटनेकी अवधितक नन्दिग्राममें भगवच्चरणपादुकाकी छत्रछायामें जीवन-यापन करनेवाले भरतको हनुमान्‌जीने लङ्कासे प्रत्यागमन-समाचार सुनानेके समय भरतजीको रामके विरह-सागरमें इस तरह मग्न देखा, मानो वे रामप्रेमकी उज्ज्वल निष्कलङ्क मूर्ति हों। रघुराजसिंहजीका कथन है—

'रामप्रेम मूरति अवदाता।'

(रामस्वयंवर, तेईसवाँ प्रबन्ध)

महाराज रघुराजसिंहने अपनी 'रामस्वयंवर' रचनामें अपनी सारी काव्यपटुता, श्रद्धा-भक्तिका सदुपयोग करते हुए स्वीकार किया है कि इस ग्रन्थकी रचना मैंने नहीं, श्रीरामने की है—

'कहौं सत्य करि राम दुहाई। रच्यौ ग्रंथ केवल रघुराई॥'

(रामस्वयंवर, तेईसवाँ प्रबन्ध)

'रामस्वयंवर'-रचना महाराज रघुराजसिंहके हृदयमें स्थित रामभक्तिकी प्रतीक है।

(६)

रामरसिक रूपकला

भगवती सरयूके रमणीय तटसे विचुम्बित अवधक्षेत्रमें निवास करनेका सौभाग्य दशरथनन्दन रामकी ही कृपासे मिलता है। रसिक संत-कवि महात्मा रूपकला भगवान् रामके परम कृपापात्र थे। चरणोंमें पायल बाँधकर अपने प्रत्येक श्वासके कम्पनपर थिरक-थिरककर भगवती सीताके कैंकर्य्यरससे मत्त तथा श्रीरामके अनन्य उपासक रूपकलाने जो दिव्य यश प्राप्त किया, वह रामभक्तोंकी रस-प्रियताके इतिहासका एक मौलिक अध्याय है। महात्मा रूपकलाका विहारप्रदेशके छपरा जनपदके मुबारकपुर ग्राममें निवासस्थान था। उनका संवत् १८९७ वि०की श्रावण कृष्ण नवमीको जन्म हुआ था। उन्होंने अपने ८७ सालके जीवनके अन्तिम ४० साल श्रीअवध-क्षेत्रके निवासमें सफल किये। अयोध्यामें रहकर उन्होंने श्रीसीतारामकी मधुर-उपासनासे अपना जीवन धन्य किया। उनकी रसमयी काव्यवाणीमें उनके सरस हृदयके भक्तिमय उद्गारोंका दर्शन होता है। 'रामायण-रस-बिन्दु' तथा 'मानस-अष्टयाम' आदि रचनाओंमें उन्होंने श्रीराम और श्रीसीताके प्रति अपने मधुर-भावकी अभिव्यक्ति की है।

भगवान् श्रीराम और श्रीसीताजीकी प्रेमाभक्ति—मधुर रतिका स्वानुभव ही उनका जीवन-सिद्धान्त था। रूपकलाके उपास्यदेव युगलस्वरूप श्रीसीताराम थे; अपने उपास्यके चरण-कैंकर्यमें उन्होंने परमानन्दका अनुभव किया। हनुमान्‌जीसे उन्होंने श्रीसीतारामकी भक्तिकी याचना की—

पुनि-पुनि बिनवों जोरि कर, मोहि कृपा करि देहु।
श्रीसिय-सियपिय-पद-कमल अबिरल बिमल सनेहु॥

महात्मा रूपकलाकी एक स्थलपर उक्ति है कि "रसस्वरूप आह्लादिनी आदिशक्ति श्रीजनकनन्दिनीकी विहार-स्थलीका नाम 'साकेत' है; उसके मध्यमें रमणीय विहार-स्थल है, जो 'श्रीभवन' अथवा 'कनकभवन' कहलाता है, पर जो नित्य रससे परिपूर्ण और देश-कालके बन्धनसे परे है। उसके मध्यभागमें एक आयताकार कुञ्ज है, जिसके दक्षिणभागमें रत्नसिंहासन है; उसपर सहस्रों सखियोंसे परिवेष्टित सनातन अनादि ब्रह्म नित्य किशोर-मूर्ति राम पराशक्ति सीताके साथ शोभित होते हैं।" श्रीसीतारामकी भक्तिको ही साधनाके क्षेत्रमें उन्होंने प्रधानता दी। उन्होंने कहा कि 'मैंने ज्ञान, वैराग्य और तप तथा योगको तिलाञ्जलि दे दी है और अपने प्रियतमकी भक्ति ही हृदयमें रख ली है। उनकी बाँकी झाँकी और चितवनमें ही मेरी अक्षय भक्ति-निधि संनिहित है।' उनकी स्वीकृति है—

प्रान तोर, मैं तोर, चित्त-बुद्धि-जस तोर सब।
एक तुही तो मोर, काह निवेदउँ तोहि पिय॥
जिय को फल, पिय! तबहिं, जब आठ पहर तव नाम।
पिय! तेरे सुमिरन बिना, जियबो कौने काम॥

जीवनके अन्तिम दिनोंमें सीताजीके अरुण चरण-कमलमें उनकी अनुरक्ति विशेषरूपसे बढ़ गयी थी; वे कहा करते थे—

सियाजी के अरुनारे दोउ तरवा।
इनसे लगन नहीं तो बिरथा दंड-कमंडल-करवा॥

रूपकलाजीने संत-साहित्यको रामकी मधुर-भक्तिसे सम्पन्न किया। वे उच्चकोटिके रामरसिक संत-कवि थे।

(७)

कविवर रसिकविहारी

रसिकविहारी निस्संदेह कविवर थे । भगवान्‌के पुण्य चरितका गान ही भारतीय कवियोंने आदिकालसे जीवनका पुण्यफल स्वीकार किया और यही काव्य-परम्परा अनन्त कालतक इस पुण्यदेशमें मान्यता प्राप्त करती रहेगी । रसिकविहारीकृत 'रामरसायन' वास्तवमें भवरोगके नाशके लिये अमोघ रसायन है । भगवान् रामके पवित्र चरित्रको सरस और काव्योचित शैलीमें वर्णित कर कविने अपना यश अमिट कर लिया है । इसमें भगवान् रामके अवतरण, विवाह, वनगमन, सीताहरण, रावण-वध आदि प्रसङ्गोंको प्रस्तुत करनेका ढंग बड़ा सुन्दर बन पड़ा है। कविकी 'रामरसायन'के प्रणयनके रूपमें रामकाव्यकारिता सर्वथा सराहनीय है ।

रसिकविहारीका परम सौभाग्य था कि अपने गुरु प्यारेरामजीकी कृपासे वे अयोध्यापति भगवान् रामके विहार-स्थल—कनकभवन मन्दिरके महन्त-पदपर अधिष्ठित थे । उन्हें श्रीरामके विग्रह-सांनिध्य-सुख और लीला-चिन्तनका दैवयोगसे स्वर्णिम अवसर सुलभ हो गया । उनका जन्म उत्तरप्रदेशके झाँसी जनपदमें संवत् १९०१ वि०में एक परम पवित्र कान्यकुब्ज ब्राह्मण-कुलमें हुआ था । राजस्थानके उदयपुर नगरके ही निकट कानोड़के रावतसाहब श्रीनाहरसिंह रसिकविहारीजीका बड़ा आदर करते थे; उन्होंने रावतसाहबकी सम्मतिसे रामरसायन-ऐसे सरस रामकाव्यकी रचनाके द्वारा भगवान् रामके पद-देशमें अपनी निश्चल रसमयी भक्तिकी प्राण-प्रतिष्ठा की । रसिकविहारीजीका नाम महन्त जानकी-प्रसाद था । रसिकविहारीजीने संवत् १९३९ वि० में 'राम-रसायन'की रचना की । कविकी स्वीकृति है—

रामकथा कछु रचत हौं, सुरस सत्य सुख धाम ।
राम-रसायन नाम यह, बरनौं ग्रंथ ललाम ॥
(रामरसायन १ । १ । १०)

उन्होंने श्रीराम-चरित्रके लीलानुक्रमसे अनेक विभाग करके आठ विधानोंमें सम्पूर्ण चरित्रका विवेकपूर्वक बखान किया है। उनका कथन है कि 'यह काव्यग्रन्थ भगवान् श्रीरामकी प्रेरणासे ही रचा गया था ।' एक दिन रसिक-विहारीजी श्रीवाल्मीकिरामायणके सुन्दरकाण्डका अवलोकन कर रहे थे । श्रीजानकीके प्रति रावणके कटुवचन और उनके कारण भगवती सीताको होनेवाले खेदसे उनका मन बहुत दुःखी हो गया । उनकी आँख लग-सी गयी । उन्होंने एक वनमें विशाल वटवृक्षके नीचे विराजमान श्रीसीतारामकी झाँकी देखी । भगवान् रामने उन्हें कल्पमणि प्रदान की । घन घिर आया, वृष्टि होने लगी, हवा चलने लगी । स्वप्न समाप्त हो गया । उनके चित्तपर इस स्वप्नका बड़ा प्रभाव पड़ा और प्रभुदत्त कल्पमणि—विमल विवेकके प्रकाशमें उन्होंने रामरसायन-प्रणयनका संकल्प कर लिया ।

भगवान् रामके प्राकट्यका कवि रसिकविहारीने बड़ा ललित वर्णन किया है; इसमें उनकी भक्ति-भावनाका सुन्दर चित्र सुलभ होता है—

अगम सनेह-सिंधु उमगो, विलोकि जाहि
सज्जन-चकोरन के हीय सुख है गयो ।
रानी अनुमोदिनी कुमोदिनी विकासी मंजु,
भूप-उर-भूमि में प्रकास अति ही छयो ॥
'रसिकविहारी' पाप-ताप-तम टारी लोक
सोक हर सीतकर सीत कर ते दयो ।
पूरन कला को सुद्ध प्राची दिसि कौसिला ते
स्वच्छ रामचंद्र चारु चंद्रमा उदै भयो ॥
(रामरसायन २ । ४ । ८६)

एक ही कवित्तमें भगवान् राम और भगवती सीताके प्राकट्यका कविने बड़ी युक्तिसे सरस वर्णन कर दोनोंके प्रति अपनी जो भक्ति प्रकट की है, वह रामपरक साहित्यमें कविकी अत्यन्त मौलिक देन है—

फूलो हिय-कंज मंजु रानी कौसिला को उत,
महिषी सुनैना इतै नलिनी विकासी है ।
'रसिकविहारी' धर्म-कोक भो विसोक उतै,
इतहि चकोरी भक्ति अमित हुलासी है ॥
असुर-अनीति-सीत-भीति उत दूर भई,
सकल त्रिताप-दाप-ताप इत नासी है ।
अवध चहूँघा उत छायो है दिनेस तेज,
इत मिथिलामें चंद्र-चंद्रिका प्रकासी है ॥
(रामरसायन २ । ७ । ६७)

अरण्य-निवास-कालमें श्रीरामका महर्षि वाल्मीकिके आश्रमपर आगमन हुआ । प्रभुने हाथ जोड़कर महर्षिसे अपने रहनेके लिये स्थान पूछा । वाल्मीकिने भगवान्‌से कहा—

मन में मुनीन के, कवीन के सुबैनन में,
नेहिन के नैनन में, प्रान में पुरारी के।
अवध-निवासिन के, मिथिला-विलासिन के
परम उपासिन के, सत्यव्रत धारी के॥
ग्यानी गुनवंतन के, सज्जन अनंतन के,
साँचे सुचि संतन के, पर-उपकारी के।
राम अभिराम सीता लखन समेत सदा
हृदयँ निवास करो 'रसिक बिहारी' के॥
(रामरसायन ४। ५। ९)

उपर्युक्त कवित्तमें सीता-राम-चरित-रस-रसिक कविने प्रकारान्तरसे भगवान्‌से अपने हृदयमें निवास करने—रमण करनेकी प्रार्थना की है। श्रीरामके शबरीके निवास-स्थानपर आने तथा भक्तिमती भीलनीके उन्हें श्रद्धापूर्वक बेर अर्पित करनेके प्रसङ्गमें कविके हृदयमें निवास करनेवाली भागवती कृपा-माधुरीका अलौकिक दर्शन होता है। भगवान्‌ने लक्ष्मणसे कहा कि 'ये बेर बहुत मीठे हैं। मैं ऋषि-मुनियोंके आश्रममें गया, उन लोगोंने विधि-विधानसे मेरा स्वागत किया; पर मुझे कहीं भी तृप्ति नहीं हुई। शबरीके बेर तो अमृतके समान हैं। अयोध्याका परित्याग करनेके बाद आज ही मैंने वनमें पेटभर भोजन किया है।' शबरी रघुनाथजीके वचनसे फूली नहीं समायी, बार-बार मधुर बेर देने लगी। रसिकविहारीजीने इस प्रसङ्गका मधुर चित्र उरेहा है—

बेर बेर बेर कै सराहैं बेर-बेर बहु
'रसिकबिहारी' देत बंधु कहँ फेर-फेर।
चाखि-चाखि भाखैं, यह वाहू ते महान मीठो,
लेहु तौ लखन, यों बखानत हैं हेर-हेर॥
बेर-बेर देवै बेर सबरी सु बेर-बेर
तोऊ रघुबीर बेर-बेर तिहि टेर-टेर।
बेर जनि लाओ बेर-बेर जनि लाओ बेर
बेर जनि लाओ, बेर लाओ, कहैं बेर-बेर॥
(रामरसायन ५। ४। ४७)

रसिकविहारीने अपने 'रामरसायन' काव्यमें चिन्मय-युगल श्रीसीतारामके भजनपर बड़ा जोर दिया है। भगवान् रामके नाममें भक्ति और रुचि बढ़ानेकी इस काव्यमें बड़ी प्रेरणा मिलती है। रसिकविहारीजीकी उक्ति है—

प्रीति राम-नाम सों, प्रतीति राम-नाम सों, सु-
रीति राम-नाम सों, सबहि भाँति भाँति ये।
आस राम-नाम सों, बिलास राम-नाम सों, सु-
पास राम-नाम सों, अनेक विधि जानिये॥
लोक राम-नाम, परलोक राम-नाम सों है
'रसिकबिहारी' सो बिचार चित ठानिये।
राम-नाम को बिहाय पावै जो पियूष, सो है
हालाहलके समान, तामें धूर सानिये॥
(रामरसायन ७। ५। ७२)

रामरसायनकार श्रीरसिकविहारीने विद्या, बुद्धि और विवेकका फल श्रीसीतारामके चरित्रके चिन्तन, गुणानुवाद और कीर्तनमें संनिहित किया है।

(८)

ब्रह्मभट्ट लछिराम

महाकवि ब्रह्मभट्ट लछिराम विक्रमीय बीसवीं शतीके प्रथम चरणके अत्यन्त समर्थ कवियोंमें परिगणित हैं। उनका जन्म संवत् १८९८ वि०में उत्तरप्रदेशके बस्ती जनपदके अमोढ़ा ग्राममें हुआ था। अनेक राजकुलोंसे उनका प्रगाढ़ सम्बन्ध था। अयोध्यानरेश महाराजा मानसिंह उनका बड़ा आदर करते थे और उनके विशेष अनुरोधपर महाकवि लछिरामने जीवनका अधिकांश अयोध्यामें ही बिताया तथा भगवान् रामका यशोगान कर अपना कवि-जीवन सफल तथा सार्थक किया। ऐसे तो उन्होंने अनेक काव्य-ग्रन्थोंकी रचना की, पर उनमें भगवान् रामकी भक्ति और पवित्र चरित्र तथा यशसे परिपूर्ण 'रामचन्द्रभूषण' काव्यग्रन्थको विशिष्ट महत्त्व प्राप्त है। उन्होंने इस काव्यकी रचना श्रीअयोध्यामें संवत् १९४७ वि०में की। अलंकार-वर्णनके व्याजसे उन्होंने इस काव्यमें अत्यन्त मौलिक ढंगसे भगवान् रामकी विविध लीलाओंका चिन्तन किया। हिंदी-साहित्यकी रीतिकाल-परम्पराके अनेक समर्थ महाकवियोंकी ही तरह उन्होंने भी आत्मसंतोष प्रकट किया था—

सुकवि रीझिहैं करि कृपा, तो कविता लछिराम।
नतरु ब्याज सों मैं रट्यो, श्रीसियवर को नाम॥
(रामचन्द्रभूषण ६२७)

महाकवि लछिरामने 'रामचन्द्रभूषण' काव्यमें अपने अंश—लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नसहित अवतार लेनेवाले भगवान् विष्णु—पूर्ण परात्पर ब्रह्म रामके अयोध्यापुरीमें जन्मके बखानमें कहा कि भूतलका भार हरनेके लिये भगवान् सगुणरूपसे प्रकट हो गये—

जोगवळ जागे भाग नाग-नर-देवन के
संतन सरोज को समोर समुदै भयो ॥
लछिराम राम अवतार के अतंक ही में,
असुर अरातिन अमान अमुदै भयो ॥
भासमान अवध-अनंद-उदयाचल पै,
परम प्रताप की प्रभा को प्रमुदै भयो ।
चौदहो भुवन अवतंस राजवंस मनि
ब्रह्मरासि कौसिला उदर सों उदै भयो ॥

(रामचन्द्रभूषण ३)

महाकवि लछिरामने सरयू-तटपर विचरण करनेवाले दशरथ-कुमार भगवान् राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नकी छविमयी मनमोहिनी झाँकीका जो भावगर्भित चित्रण किया है, उसमें चारों कुमारोंके प्रति उनके हृदयके सहज-सुलभ सात्त्विक अनुरागका परिचय मिलता है तथा साथ-ही-साथ काव्यगत वर्णन-वैशिष्ट्यका भी पता चलता है—

काछनी कमर लसैं, छोरैं पटुका की पीरे
फहरैं बसन हीरे लाल गुन गथ के ।
'लछिराम' ललित हरीरे धनु-बान कर,
लोचन बिसाल भाल भाग समरथ के ॥
रामचंद्र, लखन, भरत, रिपुसूदन पै,
वै रहे अपार ओज आनँद अकथ के ।
करत विहार संग तीर सरजू पै चारों
फल से कुमार महाराज दसरथ के ॥

(रामचन्द्रभूषण १५)

पञ्चवटीमें आगमनके प्रसङ्गमें कविवर लछिरामका बड़ा मार्मिक कथन है कि जब मुनियोंने भगवान् रामके वहाँ पधारनेकी बात सुनी, तब उनका भव-बन्धन समाप्त हो गया, राक्षसोंकी आयुकी रेखाएँ मिट गयीं और असुरोंका भाग्य फूट गया—

पंचवटी के बिहंग उमंग में बोलत बानी सुधारस घूटें ।
त्यों लछिराम अदेव ललाट तें आयु की रेख के अंक वे छूटे ॥
आसुरी हाथन तें पल एक में भाग सोहाग के भाजन फूटे ।
आगम श्रीरघुनाथ सुनें मुनि-मंडल के भव-बंधन टूटे ॥

(रामचन्द्रभूषण १८०)

वालीके वधके उपरान्त ताराके मनोभावका जो चित्रण महाकवि लछिरामने अङ्कित किया है, उसमें उनके चिन्तन और भक्तिभावनाकी सूक्ष्मता निखर उठी है; राम-कथापरक साहित्यमें वालि-वध-प्रसङ्गकी सीमामें यह अद्भुत उक्ति है विलाप करती हुई ताराकी । बड़ी मौलिकता है इस कथनमें—

धूरि धुरेटे चपेट परे महि, संग न कोऊ सहायक गोत है ।
मैया सगो भयो बैरी समै लहि, बूड़ि गयो बल बाहँ उदोत है ॥
और कहा कहिये 'लछिराम' जू सोई मिलै फल, जाकर बोत है ।
तारा कही मुख बालि निहारि कै, राम न जाने को यो फल होत है ॥

(रामचन्द्रभूषण २१४)

भगवान् रामके वनवास-कालकी समस्त मङ्गलमयी कीर्तियोंका वर्णन लछिरामने एक ही कवित्तमें बड़ी काव्य-निपुणतासे किया है । माता कौसल्या भगवान् रामके आगमनकी प्रतीक्षामें थीं । वनवासकी अवधि पूरी हो चली थी । अम्बा सगुनका विचार ही कर रही थीं कि भरतजी आ पहुँचे और माताको रावण-वध करनेवाले लङ्काविजयी भगवान् रामके आगमनकी सूचना दी—

तिलक त्रिकूट श्रीबिभीषन बिसाल भाल,
बालि बधि पंपा दै सुकंठहि असंका को ।
'लछिराम' सूपनखा त्यों खर-दूषन के
बदन बिदारि बोरे बीरद के डंका को ॥
जातुधान बंसहि बिधंसन सकल मारे
मेघनाद कुंभकर्न रावन-से बंका को ।
कौसिला मङ्गल बैठी बूझिबे सगुन, सो लों
गरजे भरत, राम जीते लीति लंका को ॥

(रामचन्द्रभूषण ४८५)

महाकवि लछिरामके राम सर्वव्यापी परब्रह्म परमेश्वर हैं । वे समस्त भगवद्रूपोंमें अभिव्यक्त हैं । लछिरामका उद्गार है—

गोकुल गोकुलनाथ बने, ब्रज में ब्रजराज सनेह सँवारे ।
द्वारिका मंडल द्वारिकानाथ, जगे जगनाथ समुद्र-किनारे ॥
व्योमथली, महि, सातां पताल, लसै लछिराम प्रताप पसारे ।
चौदहों लोक सनाथ करैं, रघुनाथ अनाथ के नाथ हमारे ॥

(रामचन्द्रभूषण २४७)

महाकवि लछिरामकी राम-काव्यकारिता धन्य है । रामका यशोगान ही काव्यका पुण्य फल है ।

(९)

बाबा रघुनाथदास रामसनेही

बाबा रघुनाथदास रामसनेहीने विक्रमीय संवत्की बीसवीं शतीके प्रथम चरणमें भगवान् रामकी अवतार-भूमि सौभाग्यवती अयोध्यापुरीमें निवास कर अपनी तपोमयी

राममक्तिसे लोगोंका कल्याण किया था। उन्होंने संवत् १९११ वि० में 'विश्रामसागर'की रचना की। इस ग्रन्थके उत्तरार्धमें उन्होंने सात काण्डोंमें श्रीरामायण तथा अनेक पुराणोंमें वर्णित रामचरितके अनुसार भगवान् रामके दिव्य चरित्रका बखान किया है। इसमें श्रीरामकी भगवत्ताका प्रतिपादन किया गया है। मुनियोंद्वारा श्रीरामके नामकरण-संस्कारके अवसरपर यह व्यक्त कराया गया है कि चराचरमें जिनका तेज सर्वत्र व्याप्त है, उन सुखसागर भगवान्का ही नाम राम है—

जासु तेज चर-अचर में व्यापक व्योम समान।
तासु राम अस नाम, जो सुख सागर भगवान॥

बाबा रघुनाथदासका अपने 'विश्रामसागर' ग्रन्थमें कथन है कि 'राम ही सबमें रमण करते हैं। सर्वत्र उनका ही रमण सिद्ध है। भक्तजन इस तरह रामका दर्शन कर अपनी मनोकामना सफल करते हैं।'

राम रमत जो सवन में, सव जहँ रमै सो राम।
रामहि लखि रघुनाथ जन लहत स्ववांछित काम॥

'विश्रामसागर'के उत्तरकाण्डमें भगवान् रामके राज्याभिषेकके समय शिव और ब्रह्माजीद्वारा स्तुति किये जानेके बाद वेद विप्ररूप धरकर भगवान्का गुणानुवाद करते हैं। इस गुणानुवादमें वेदोंमें वर्णित श्रीरामके निर्गुण-सगुण स्वरूपका बड़ा सुन्दर चित्राङ्कन उपलब्ध होता है। वेदोंकी यही मार्मिक उक्ति है—

'जय जगदीस अजीस पति, निर्गुन-सगुन सरूप।'

बाबा रघुनाथदासजीके गुरु महात्मा देवादास थे। उन्हींकी चरणकृपासे रघुनाथदासने 'विश्रामसागर'-जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थकी रचना कर भगवान् रामके यशोगानसे अपनी पवित्र वाणी सफल की—

श्री गुरु देवादास के चरन-कमल धरि माथ।
रामचरित सुखप्रद कछुक बरनै जन रघुनाथ॥

बाबा रघुनाथदासने 'विश्रामसागर'के अन्तमें स्वीकार किया है कि 'श्रीसीताराम ही हमारे इष्ट हैं और रामका नाम ही हमारे लिये प्रिय माला है।'

बाबा रघुनाथदासका सम्पूर्ण जीवन ही श्रीसीतारामकी निर्मल भक्तिका प्रतीक है।

(१०)

महाकवि हरिऔध

महाकवि हरिऔधने 'उत्तररामचरित'के प्रणेता महाकवि भवभूतिकी तरह अपने काव्यसृजनमें शृङ्गाररसके विप्रलम्भ-रूपको ही महत्त्व देकर श्रीकृष्ण और भगवान् रामके पवित्र चरित्रका करुण विरहपरक चित्रण किया। उन्होंने अपने प्रसिद्ध काव्य 'प्रिय-प्रवास' और 'वैदेही-वनवास'के प्रणयनमें रस-परिपाकके लिये क्रौञ्चवधके परिणामस्वरूप आदिकवि महर्षि वाल्मीकिके—'मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।' श्लोकसे ही प्रेरणा ली।

महाकवि हरिऔधने उत्तरप्रदेशके आजमगढ़ जनपदके निजामाबाद स्थानमें संवत् १९२२ वि०में यजुर्वेदीय सनाढ्य ब्राह्मणकुलमें जन्म लिया था। उन्होंने ८१ वर्षकी अवस्थामें संवत् २००३ वि०में शरीर छोड़ दिया। निस्संदेह वे विक्रमीय संवत्की बीसवीं शतीके हिंदी-काव्य-जगत्के सर्वमान्य सम्राट् थे। भगवान् राम और कृष्ण, भगवती सीता और राधाके प्रति उनके हृदयमें एकरस श्रद्धा-भक्ति थी।

महाकवि हरिऔधकृत 'वैदेही-वनवास' भारतीय साहित्यमें रामपरक काव्य-सृजनकी अविच्छिन्न सनातन परम्परामें बड़ी सफल और सरस काव्यकृति है। इसमें श्रीरामके द्वारा उनके उत्तरचरितकी लोकविश्रुत घटना 'सीतापरित्याग'का वर्णन है, जिसमें प्रजारञ्जन और लोकसंतोषकी भावनासे प्रेरित होकर दुर्मुखद्वारा रजकके अपवादको सुनकर राजा रामने सीताको श्रीवाल्मीकिके आश्रममें भेजकर उदात्त और पवित्र राजधर्मका निष्कलङ्क निर्वाह किया। भारतीय साहित्यमें इस विषयको आधार बनाकर विभिन्न भाषाओंमें जितने काव्य और नाटक अबतक लिखे गये हैं, उनमें लोकोत्तरानन्ददायक 'वैदेही-वनवास'को निस्संदेह विशिष्ट स्थान प्राप्त है। महाकवि हरिऔधने 'सीता-परित्याग'का काव्य-विषय बड़े ही मौलिक ढंगसे प्रस्तुत किया है। यह उनकी काव्यगत असाधारण महनीयता है। महाकवि हरिऔधने 'वैदेही-वनवास' के प्राक्कथनमें कहा है कि महाराज रामचन्द्र मर्यादा-पुरुषोत्तम, लोकोत्तर-चरित और आदर्श नरेन्द्र अथवा महीपाल हैं, श्रीमती जनकनन्दिनी सती-शिरोमणि और लोकपूज्या आर्य-बाला हैं। इनका आदर्श आर्य-संस्कृतिका सर्वस्व है, मानवताकी महनीय विभूति है और है स्वर्गीय सम्पत्ति-सम्पन्न। इसलिये इस ग्रन्थमें

इसी रूपमें इसका निरूपण हुआ है। महाकवि हरिऔधके राम आजानुबाहु, कमल-लोचन, मर्यादाके धाम और शील-सज्जनताके धुरंधर हैं तथा विदेहनन्दिनी सीता सुकृत-स्वरूपा और समस्त गुणोंकी निधि हैं। एक उपवनके उच्चमण्डपमें विराजित दिव्य युगलमूर्ति—श्रीराम और भगवती सीताके संस्तवनमें महाकविके उद्गार हैं—

उपवनके अति उच्च एक मण्डपमें विलसी,
मूर्ति-युगल इन दृग्योंके देखे थी विकसी।
इनमें से थे एक दिवाकर कुलके मण्डन,
श्याम गात आजानु बाहु सरसीरुह लोचन॥
मर्यादाके धाम शील सौजन्य धुरंधर,
दशरथ नन्दन राम परम रमणीय कलेवर।
थीं दूसरी विदेह नन्दिनी लोक ललामा,
सुकृतिस्वरूपा सती विपुल मञ्जुल गुण धामा॥

(वैदेही-वनवास १। १४-१५)

गुप्तचर दुर्मुखसे भगवान् रामने जनकनन्दिनीके प्रति रजकद्वारा लगाये गये अपवाद—रावणगृह-आवास-कलङ्ककी बात सुनकर प्रजारञ्जन और लोकाराधनकी संकल्प-पूर्तिपर जब गुरु वसिष्ठसे मन्त्रणा की; तब उन्होंने श्रीरामकी नीतिकी सराहना की तथा उस नीतिके अनुरूप ही सीताके आचरणमें विश्वास प्रकट किया। श्रीराम और वसिष्ठजीके कथोपकथनमें हरिऔधजीने बड़ी युक्तिसे श्रीरामकी राजनीति-का समर्थन किया है और सतीशिरोमणि भगवती सीताके पवित्र चरित्रका वर्णन किया है। वसिष्ठजीकी श्रीरामके प्रति उक्ति है—

जो हो, पर पथ आपका प्रशंसनीय है।
लोकाराधन की उदारतम नीति है॥
आत्मत्याग का बड़ा उच्च उपयोग है।
प्रजा-पुञ्ज की उसमें भरी प्रतीति है॥

(वैदेही-वनवास ४। ५१)

श्रीवसिष्ठजीने रामको सत्प्रेरणा दी कि वे सीताके परित्यागकी बात उनको बता दें—

किंतु आपसे यह विशेष अनुरोध है—
सब बातें कान्ताको बतला दीजिये॥
स्वयं कहेगी वह पतिप्राणा आपसे—
'लोकाराधनमें विलम्ब मत कीजिये'॥

सती-शिरोमणि पति-परायणा पूत-धी।
वह देवी है दिव्य भूतियों से भरी॥
है उदारतामयी सुचरिता सद्व्रता।
जनक-सुता है परम पुनीता सुरसरी॥

(वैदेही-वनवास ४। ५९-६०)

श्रीरामने भगवती जनकनन्दिनीका परित्याग कर दिया। वे वाल्मीकिके आश्रममें आ गयीं। रामायणकथाके परम मर्मज्ञ महर्षि वाल्मीकिने भगवती सीताके स्वागत-सत्कारमें जो सहृदयतापूर्ण उद्गार प्रकट किये, उनमें महाकवि हरिऔधकी भक्ति-भावनाका निर्मल दर्शन होता है। महर्षि वाल्मीकिने कहा—

पुत्रि जनकजे! मैं कृतार्थ हो गया हूँ।
आप कृपा करके यदि आयी हैं यहाँ॥
वे थल भी हैं अब पावन-थल हो गये।
आपका परम-शुचि-पग पड़ पाया जहाँ॥
आप मानवी हैं तो देवी कौन है?
महा-दिव्यता किसे कहाँ ऐसी मिली॥
पातिव्रत अति पूत सरोवर-अङ्कमें।
कौन पति-रता पङ्कजिनी ऐसी खिली॥

(वैदेही-वनवास ८। २८-२९)

भगवान् राम त्रिभुवन-पति हैं तो जनकनन्दिनी उनकी प्राणप्रियतमा साक्षात् भक्ति हैं। महाकवि हरिऔधने वाल्मीकि-आश्रमवासिनी सीताके प्रति शत्रुघ्नद्वारा कहलवाया है—

यदि रघुकुल-तिलक पुरुष हैं, ओजवती शक्ति हैं उनकी।
जो प्रभुवर त्रिभुवन-पति हैं तो आप भक्ति हैं उनकी॥

(वैदेही-वनवास ११। ६५)

महाकवि हरिऔधने 'वैदेही-वनवास' काव्यके सम्पूर्ण अठारह सर्गोंमें भगवान् रामके पावन उत्तरचरितका काव्यरूप प्रस्तुतकर रामकथामें अपनी प्रगाढ़ श्रद्धा व्यक्त की है। हरिऔधजीने कहा है, 'वैदेही-वनवास'के सम्बन्धमें प्राक्कथनके अन्तमें—

जिसके सेवन से बने पामर नर-सिरमौर।
राम-रसायनसे सरस है न रसायन और॥

महाकविकी 'वैदेही-वनवास'के रूपमें रामकथाकविता परम गौरवमयी है।

(११)

महाकवि रामचरित उपाध्याय

महाकवि रामचरित उपाध्यायने श्रीवाल्मीकि-रामायणके आधारपर 'रामचरित-चिन्तामणि' महाकाव्यकी रचना कर भगवान् रामसे सम्बन्धित उपासना-क्षेत्रमें एक मौलिक और नवीन कीर्तिमान स्थापित किया। इस महाकाव्यमें रामके भगवत्स्वरूपकी मर्यादा-वृत्तिकी कविने बड़ी सावधानी और सूक्ष्म दृष्टिसे अभिव्यक्ति की है। यद्यपि रामकी कथा इसमें संक्षेपमें ही वर्णित है, तथापि वर्णनका ढंग अत्यन्त आकर्षक और काव्यके प्रायः सभी गुणोंसे परिपूर्ण है। पण्डित रामचरित उपाध्यायका जन्म संवत् १९२९ वि० में उत्तर प्रदेशके गाजीपुर जनपदमें हुआ था।

अयोध्यानरेश दशरथके घरमें बालकरूपमें पिताकी गोदमें मचल-मचलकर रोनेवाले श्रीरामका बड़ा स्वाभाविक चित्रण किया है कविने, जिसमें भगवान्‌के प्रति उनकी श्रद्धा और महत्त्वबुद्धिका परिचय मिलता है—

मुनि-वृन्द वन में है तरसता हर घड़ी जिसके लिये।
साकेत में वह खेलता है, नृप फिरें किसके लिये॥
जिस श्यामसुन्दर राम को लख ईश होते मोद में।
वह है मचलकर रो रहा, विश्वेश दशरथ-गोदमें॥
जिसकी भृकुटि-इंगित हुए यह नाचता संसार है।
वह ठुमुक करके नाचता अवधेशके आगार है॥
जो विश्वको देकर अशन जगदीश विश्वम्भर हुआ।
वह दूध-रोटीका खवैया अवधपति के घर हुआ॥

(रामचरित-चिन्तामणि १ । ४७-४८)

राक्षसोंके विनाशके लिये श्रीविश्वामित्रजीने दशरथजीसे राम-लक्ष्मणको साथ भेजनेकी याचना की और कहा कि 'राम ही असुरोंको मारकर पृथ्वीपर उनके उत्पात और अत्याचारका नाश कर सकते हैं; असुर मायावी हैं, राम ही उनकी मायाका अन्त कर सकते हैं। वे तीनों लोकोंके नियन्ता हैं।' श्रीविश्वामित्रके उपर्युक्त कथनमें भगवान् रामके अवतारको महाकवि रामचरित उपाध्यायने विदेशी सत्तासे आक्रान्त अपने समकालीन भारतीय राष्ट्रके संरक्षणका निमित्त बनाया है। विश्वामित्रजीकी उक्ति है—

'मायावी हैं असुर, राम माया-नाशक हैं।
नृप! समझे या नहीं, राम त्रिभुवन-शासक हैं॥'

(रामचरित-चिन्तामणि २ । ३०)

महाकवि रामचरित उपाध्यायके रामका अवतार भूमिका भार हरनेके ही लिये हुआ था। भगवान् रामने लक्ष्मणजीसे कहा कि 'अयोध्यामें राज्य करनेकी अपेक्षा भूमिके भारको हरना अधिक महत्त्वका कार्य है।' वन-गमनके प्रसङ्गमें उनकी उक्ति है—

यश को मलिन मैं क्यों करूँ! भू-राज करनेके लिये।
जब जन्म मेरा है हुआ भू-भार हरनेके लिये॥

(रामचरित-चिन्तामणि ७ । १९)

मारीचने सीता-हरणकी कुबुद्धिपूर्ण योजनावाले रावणको लौटकर लङ्कामें राज्य करनेकी सम्मति दी और भगवान् रामकी भगवत्ता और भगवती सीताकी परम दिव्यताकी ओर संकेत किया। कविने दो-ही-चार शब्दोंमें रामतत्त्वकी सूक्ष्मताका मारीचके माध्यमसे जो दिग्दर्शन कराया है, वह अपने आपमें बड़ा ही मार्मिक और अर्थपूर्ण है। मारीचने रावणको समझाया—

पुण्य-पुञ्ज भारतमें, रावण! सुख सोता है साधु-समाज।
बात मान जा, छेड़ न उसको, कर जाकर लङ्का का राज॥
मन्त्री तेरे स्वार्थ-लिप्त हैं, उनकी बातें मान नहीं।
क्या हैं राम, कौन है सीता, इसका तुझको ज्ञान नहीं॥

(रामचरित-चिन्तामणि ११ । ४०)

सम्पूर्ण आसुरी सत्ताके सार्वभौम प्रतिनिधि रावणको अङ्गदजीने श्रीरामकी शरणमें जानेकी जो सत्प्रेरणा प्रदान की थी, उसमें श्रीरामके भागवत ऐश्वर्यका महाकवि रामचरित उपाध्यायद्वारा बड़ा सुन्दर वर्णन हुआ है। अङ्गदने रावणको सावधान किया—

सब सुरासुर हों वश आपके, करगता यदि हों सब सिद्धियाँ।
तदपि हे दनुजेश्वर जानना! निज विनाशक नाशक राम को॥
अखिल-लोक-नृपेश्वर राम को समझ के उनसे मिलिये अभी।
यह पुरी रघुनाथ-रणाग्नि में, दनुज! होम न हो, मन में डरो॥

(रामचरित-चिन्तामणि १९ । ३६-३७)

लव-कुश—दोनों कुमारोंने श्रीरामके सम्मुख रामायणका गान करते हुए काव्यके सम्बन्धमें जो कुछ कहा, वह रामचरित उपाध्यायकी रामकाव्य-सम्बन्धी भावनाका परिचायक है—

सत्काव्य चिन्तामणि-सदृश है, कवि जगद्गुरु तुल्य है।
सत्यकाव्य ही त्रैलोक्य में, बस, एक वस्तु अमूल्य है॥

(रामचरित-चिन्तामणि २५ । ८७)

रामचरित-चिन्तामणि भगवान् रामके पवित्र चरित्रका काव्य है, रामचरित उपाध्यायकी रामभक्ति स्तुत्य है।

(१२)

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त

'भारत-भारती' ऐसे साहसपूर्ण काव्यके रचयिता रामभक्त कवि मैथिलीशरण गुप्तने अपने 'साकेत' महाकाव्यमें नितान्त मौलिक शैलीमें सम्पूर्ण रामचरितका बखान करते हुए बीसवीं शतीकी जागरणभावनासे सम्पन्न भारतीय राष्ट्रीयताको प्राणान्वित कर हिंदी-साहित्य ही नहीं, समस्त भारतीय साहित्यकी श्रीवृद्धिमें अप्रतिम योग दिया है। 'साकेत' महाकाव्यमें अत्यन्त नवीन ढंगसे रामकथा प्रस्तुत की गयी है, यद्यपि श्रीरामचरित्रके वर्णनमें महाकवि मैथिलीशरणजीने आदिकवि वाल्मीकि, महर्षि व्यास और महाकवि कालिदासके रघुवंशपरक काव्य-वर्णनसे प्रेरणा प्राप्त की है, तथापि अनेक स्थलोंपर गोस्वामी तुलसीदासके रामचरितमानसका भी स्पष्ट प्रभाव दीख पड़ता है उनकी कृतिमें। राष्ट्रकवि मैथिलीशरणजीने 'साकेत'महाकाव्यमें सौभाग्यवती उर्मिला, माण्डवी, शत्रुघ्न तथा भरतके चरित्रवर्णनमें व्यापक राष्ट्रहितका आर्यसंस्कृतिसे मर्यादितरूप व्यक्त किया है और कैकेयीके चरित्रको काव्यका उपसंहार करते हुए बहुत सार्थक और महत्त्वपूर्ण परिलक्षित किया है। अपनी दूसरी रामपरक 'पञ्चवटी' नामकी रचनामें मैथिलीशरणजीने श्रीलक्ष्मणकी भगवती सीता और रामके प्रति सेवा-भावनाकी सजीव मूर्ति प्रतिष्ठित कर दी है।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्तका जन्म संवत् १९४३ वि० में उत्तरप्रदेशके झाँसी जनपदके चिरगाँव ग्राममें हुआ था। उनके पिता सेठ रामचरणजी वैष्णव और सनातनी विचारधाराके रामभक्त थे। मैथिलीशरणजीके जीवनको काव्यरचनाकी ओर प्रेरित करनेमें उनका बहुत बड़ा हाथ था। मैथिलीशरणजी अंग्रेजी दासतासे मुक्त पुण्यमय भारतदेशके प्रथम राष्ट्रकवि थे और स्वतन्त्र भारतकी राज्यपरिषद्के राष्ट्रपतिद्वारा मनोनीत कवि-प्रतिनिधि थे। वे सदा रामकी भक्तिमें भावविभोर रहते थे। उनकी सरल जीवन-वृत्तिमें आस्तिकता भरी पड़ी थी।

उन्होंने बारह सर्गोंमें अपना 'साकेत' महाकाव्य पूरा किया और उसमें रामका यशोगान कर अपनी वाणी सार्थक की। उन्होंने अपने पिताके कर-कमलमें 'साकेत'का समर्पण करते हुए उन्हींकी सीख दुहराई है—

'वहाँ कल्पना भी सफल, जहाँ हमारे राम।'

अपने इष्टदेव रामके प्रति मैथिलीशरण गुप्तकी उक्ति है—'हे राम! आपने मानवरूपमें लीला करनेके लिये सगुणरूप धारण किया। आप सम्पूर्ण विश्वमें रमण करते हैं। यदि आप ईश्वर नहीं हैं तो मैं निरीश्वर हूँ; ईश्वर इसके लिये मुझे क्षमा करें। यदि आप मेरे चित्तमें रमण नहीं करते तो हे राम! मेरा चित्त ही आपमें—आपके ललित लीला-चिन्तनमें तत्पर रहे।'

राम तुम मानव हो? ईश्वर नहीं हो क्या?
विश्व में रमे हुए, नहीं सभी कहीं हो क्या?
तब मैं निरीश्वर हूँ, ईश्वर क्षमा करे।
तुम न रमो तो मन तुममें रमा करे॥

भगवान् रामके अवतार धारण करनेके प्रसङ्गमें कविने 'साकेत'के आरम्भमें निवेदन किया है।

स्वर्ग से भी आज भूतल बढ़ गया।
भाग्य भास्कर उदयगिरि पर चढ़ गया॥
हो गया निर्गुण सगुण साकार है।
ले लिया अखिलेश ने अवतार है॥

भगवान्ने मानवरूपमें प्रकट होकर मानवीका पयपान किया, यह उन लीलाधामकी भक्तवत्सलता है। उन्होंने भूमिका भार हरनेके लिये तथा संसारके लोगोंको सत्पथपर चलनेके लिये अवतार लिया। मैथिलीशरणजीकी उक्ति है—

किस लिये यह खेल प्रभु ने है किया?
मनुज बन कर मानवी का पय पिया?
भक्तवत्सलता इसी का नाम है।
और वह लोकेश लीला धाम है।

(साकेत, प्रथम सर्ग)

मैथिलीशरण गुप्तने इस तथ्यमें दृढ़ विश्वास प्रकट किया कि श्रीरामका चरित्र काव्य है, इस चरित्रका चिन्तन करना ही कवि बन जाना है। कोई भी हो, यदि उसकी वाणी रामचरित्रका गान करती है, रचना करती है, तो वह निस्संदेह कवि है। कोई भी रामका चरित्र-चिन्तन कर सहज रूपसे कवि होनेकी प्रतिष्ठा पा सकता है। उन्होंने वनवासकी

अवधिमें श्रीरामके श्रीवाल्मीकिजीके आश्रमपर आनेके समय आदिकविके मुखारविन्दसे इस सत्यका प्रतिपादन कराया है—

'राम, तुम्हारा वृत्त आप ही काव्य है,
कोई कवि बन जाय, सहज सम्भाव्य है।'
(साकेत, पञ्चम सर्ग)

'साकेत'में मैथिलीशरणजीने श्रीरामकी जन्मभूमि अयोध्याके प्रति आत्मीयता अथवा भक्तिभावनाका बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। वनकी सीमामें प्रवेश करते ही वनवासी रामने जन्मभूमिके प्रति जो आत्मीयता प्रकट की, उसमें कविकी अयोध्याके प्रति अनुरक्तिकी झाँकी उपलब्ध होती है। बड़ी पुण्यमयी भावना है यह रामकी अवतार-भूमिके प्रति—

स्वर्गोपरि साकेत ! राम का धाम तू,
रक्षित रख निज उचित अयोध्या नाम तू।
राज्य जाय, मैं आप चला जाऊँ कहीं,
आऊँ अथवा लौट यहाँ आऊँ नहीं;
रामचन्द्र भवभूमि अयोध्या का सदा,
और अयोध्या रामचन्द्र की सर्वदा।
(साकेत, पञ्चम सर्ग)

'साकेत'के राम साक्षात् मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान्, चराचरके पालन-कर्ता विष्णु हैं। गङ्गा-पार उतरनेका प्रसङ्ग है। भगवती सीता पराम्बाने गुह (केवट) को अपनी स्वर्णमुद्रिका उतारकर मिलन-स्मृतिके प्रतीकस्वरूप देनी चाही। गुहने बड़े निष्कपटभावसे कहा कि 'मुझे ऐसी कृपा नहीं चाहिये। हे राम! मुझे तो उस चरण-रजकी ही नितान्त अपेक्षा है, जिसने जड बनी अहल्यामें चेतन मूर्तिका सृजन कर दिया।' कवि मैथिलीशरण गुप्तकी भगवच्चरणरजकी निष्ठा धन्य है। गुहका अत्यन्त भक्तिपूर्ण निवेदन है—

क्षमा करो, इस भाँति न तुम तज दो मुझे,
स्वर्ण नहीं, हे राम ! चरण-रज दो मुझे।
जड भी चेतन मूर्ति हुई पाकर जिसे,
उसे छोड़ पाषाण, भला भावे किसे !
(साकेत, पञ्चम सर्ग)

गुरु वशिष्ठने दशरथकी जलती चिता देखकर लोगोंको समझाया कि 'मानव-जीवन क्षण-भङ्गुर है; हमें अपने जीवनमें सत्य, शिव और सुन्दरकी स्थापना करनी चाहिये। राम ही परम सत्य हैं, उनका ही नाम सत्य है—

सत्य है स्वयं ही शिव, राम सत्य-सुन्दर हैं,
सत्य-काम, सत्य और राम-नाम सत्य है।
(साकेत, सप्तम सर्ग)

मैथिलीशरण गुप्तने संजीवनी-ओषधि लेकर अयोध्याके सीमान्त-प्रदेशसे निकलनेवाले हनुमान्के मुखसे, जो भरतके बाणसे विद्ध होकर 'हा लक्ष्मण ! हा सीते !' कहकर क्षणमात्रके लिये भूमिपर आ गये थे, सीताहरण-प्रसङ्गसे लेकर लक्ष्मणकी मूर्च्छाके प्रसङ्गतकके निरूपणमें भगवान् रामके चरित्रका बड़ा मनोरम वर्णन कराया है तथा उसके बादके रावण-वध और लङ्का-विजयके प्रसङ्गका महर्षि वसिष्ठद्वारा वर्णन प्रस्तुत किया है। इस तरह उन्होंने 'साकेत' महाकाव्यमें भगवान् रामके पवित्र चिन्तनसे अपनी भगवद्भक्तिकी पुष्टि की है। हनुमान्जीने अपनेद्वारा निरूपित चरित्रके अन्तमें भरतको समझाते हुए सत्य-विग्रह श्रीरामकी शक्तिके विवेचनमें कहा है—

मायावी रावण प्रसिद्ध है, किंतु सत्य-विग्रह श्रीराम।
चिन्ता करें न आप चित्तमें, निश्चित ही है शुभ परिणाम॥
(साकेत, एकादश सर्ग)

अयोध्या लौटनेपर रामने भरतके त्यागकी सराहनामें उनसे मिलते समय जो भाव व्यक्त किया, उसमें कविने भगवान्की भक्तवत्सलताका परिचय कराया है—

उठ, भाई ! तुल सका न तुझसे, राम खड़ा है।
तेरा पलड़ा बड़ा, भूमिपर आज पड़ा है॥
(साकेत, द्वादश सर्ग)

मैथिलीशरण गुप्तका 'साकेत' और 'पञ्चवटी'में रामचरितका चिन्तन उनकी भगवद्भक्तिकी देन है।

परम पूज्य ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दकाकी लिखी हुई ८६ पुस्तकें

पुस्तकका नाम	मूल्य
श्रीमद्भगवद्गीता तत्त्व-विवेचनी	४.००
भक्तियोगका तत्त्व	१.२५
आत्मोद्धारके साधन	१.२५
कर्मयोगका तत्त्व	१.१२
महत्त्वपूर्ण शिक्षा	१.००
,, सजिल्द	१.३७
परम साधन	१.००
,, सजिल्द	१.३७
मनुष्य-जीवनकी सफलता	१.००
,, सजिल्द	१.३७
मनुष्यका परम कर्तव्य	१.००
परमशान्तिका मार्ग	१.००
,, सजिल्द	१.३७
ज्ञानयोगका तत्त्व	१.००
,, सजिल्द	१.३७
प्रेमयोगका तत्त्व	१.००
,, सजिल्द	१.३७
आत्मोद्धारके सरल उपाय	.७५
तत्त्व-चिन्तामणि बड़ा	
भाग १	.६२
भाग २	.८७
भाग ३	.७०
भाग ४	.८१
भाग ५	.८१
भाग ६	१.००
भाग ७	१.१२
तत्त्व-चिन्तामणि गुटका	
भाग १ सजिल्द	.५०
,, २ सजिल्द	.५६
,, ३ सजिल्द	.५०
,, ४ सजिल्द	.६२
,, ५ सजिल्द	.५६
परमार्थ-पत्रावली	
,, भाग १	.२५
,, भाग २	.२५
,, भाग ३	.५०
,, भाग ४	.५०

पुस्तकका नाम	मूल्य
अध्यात्मविषयक पत्र	.५०
शिक्षाप्रद पत्र	.५०
स्त्रियोंके लिये कर्तव्य-शिक्षा	.३७
रामायणके कुछ आदर्श पात्र	.३७
बालकोंके कर्तव्य	.३०
महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	.२५
शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	.२५
आदर्श भ्रातृ-प्रेम	.२०
ध्यान और मानसिक पूजा	.२०
ब्रह्मचर्य और संध्या-गायत्री	.२०
आदर्श नारी सुशीला	.२०
गीता-निबन्धावली	.१६
नवधा भक्ति	.१२
श्रीभरतजीमें नवधा भक्ति	.१२
बाल-शिक्षा	.१२
भारतीय संस्कृति एवं शास्त्रोंमें नारीधर्म	.१५
तीन आदर्श देवियाँ	.१२
ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप	.१०
नारीधर्म	.१०
गीता पढ़नेके लाभ	.१०
श्रीसीताके चरित्रसे आदर्श शिक्षा	.०८
श्रीप्रेम-भक्ति-प्रकाश	.०६
सच्चा सुख और उसकी प्राप्तिके उपाय	.०६
सामयिक चेतावनी	.०६
श्रीमद्भगवद्गीताका तात्त्विक विवेचन	.०६
गीतोक्त कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोगका रहस्य	.०५
संत-महिमा	.०५
वैराग्य	.०५
भगवान् क्या हैं ?	.०३
भगवान्‌की दया	.०३

पुस्तकका नाम	मूल्य
सत्सङ्गकी कुछ सार बातें	.०३
गीतोक्त सांख्ययोग और निष्काम कर्मयोग	.०३
सत्यकी शरणसे मुक्ति	.०३
भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय	.०३
व्यापार-सुधारकी आवश्यकता	.०३
स्त्रियोंके कल्याणके कुछ घरेलू प्रयोग	.०३
परलोक और पुनर्जन्म	.०३
ज्ञानयोगके अनुसार विविध साधन	.०३
अवतारका सिद्धान्त	.०३
चतुःश्लोकी भागवत, सटीक	.०३
धर्म क्या है ?	.०२
तीर्थोंमें पालन करनेयोग्य कुछ उपयोगी बातें	.०२
महात्मा किसे कहते हैं ?	.०२
ईश्वर दयालु और न्यायकारी है	.०२
प्रेमका सच्चा स्वरूप	.०२
हमारा कर्तव्य	.०२
ईश्वर-साक्षात्कारके लिये नाम-जप सर्वोपरि साधन है	.०२
त्यागसे भगवत्प्राप्ति	.०२
चेतावनी	.०२
कल्याण-प्राप्तिकी कई युक्तियाँ	.०२
शोकनाशके उपाय	.०२
श्रीमद्भगवद्गीताका प्रभाव	.०२
गजल गीता	.०१
English Commentary on Śrīmad Bhagavad-Gītā	8.00
Gems of Truth Part I	.75
,, ,, Part II	.75
What is God ?	.12
What is Dharma ?	.05

सभी पुस्तकोंका डाकखर्च अलग

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

रजि० सं० एल० १७५

श्रीराम-साहित्यकी ४५ पुस्तकें

पुस्तक	मूल्य
१—श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण सटीक (दो खण्डोंमें)	२०.००
२— ,, ,, केवल भाषा	१३.००
३—श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (केवल मूल)	९.००
४—श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण सुन्दरकाण्ड मूल	१.००
५— ,, ,, गुटका	१.२५
६—अध्यात्मरामायण	४.००
७—श्रीरामचरितमानस मोटा टाइप सटीक, बृहदाकार	१८.००
८— ,, केवल मूल बृहदाकार	११.००
९—श्रीरामचरितमानस मोटा टाइप सटीक	८.५०
१०—श्रीरामचरितमानस मझला सटीक	४.००
११—श्रीरामचरितमानस मोटा टाइप केवल मूल पाठ	५.००
१२—श्रीरामचरितमानस पाठभेदसहित केवल मूल मोटा टाइप	३.७५
१३—श्रीरामचरितमानस मूल मझला	२.००
१४—श्रीरामचरितमानस (मूल गुटका)	.९०
१५—श्रीरामचरितमानस बालकाण्ड सटीक	१.२५
१६— ,, अयोध्याकाण्ड सटीक	.९०
१७— ,, अरण्यकाण्ड मूल	.२०
१८— ,, ,, सटीक	.३०
१९— ,, किष्किन्धाकाण्ड सटीक	.१५
२०— ,, सुन्दरकाण्ड सटीक	.३०
२१— ,, लङ्काकाण्ड सटीक	.६०
२२—श्रीरामचरितमानस उत्तरकाण्ड सटीक	.६०
२३—मानस-रहस्य	१.५०
,, सजिल्द	१.९०
२४—मानस-शङ्का-समाधान	.६०
२५—विनय-पत्रिका सटीक	१.२५
,, सजिल्द	१.६५
२६—गीतावली सटीक	१.२५
,, सजिल्द	१.६५
२७—कवितावली सटीक	.६५
२८—दोहावली सटीक	.६०
२९—रामाज्ञा-प्रश्न	.४५
३०—श्रीकृष्ण-गीतावली सटीक	.३५
३१—जानकी-मंगल सटीक	.२५
३२—पार्वती-मंगल सटीक	.१५
३३—वैराग्य-संदीपनी सटीक	.१५
३४—बरवै रामायण सटीक	.१५
३५—सूर-रामचरितावली सटीक	.८५
,, सजिल्द	१.२५
३६—भगवान राम भाग १	.३०
३७— ,, ,, भाग २	.३०
३८—बाल-चित्र-रामायण १	.३०
३९— ,, ,, भाग २	.३०
४०—आदर्श भ्रातृ-प्रेम	.२०
४१—श्रीरामसहस्रनामस्तोत्र सटीक	.१८
४२—श्रीरामसहस्रनामस्तोत्र (मूलमात्र)	.१२
४३—मूलरामायण सटीक	.१०
४४—श्रीरामगीता	.०७
४५—मानस-पीयूष (श्रीरामचरितमानसकी विस्तृत व्याख्या) सात खण्डोंमें	८१.००

विशेष जानकारीके लिये सूचीपत्र मुफ्त मँगाइये।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)